प्राप्ति-स्थान

१ श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति-रक्षक संघ
सैलाना ४५७-५५० (मध्य-प्रदेश)

२ " एदुन बिल्डिग, पहली धोबी तलाब लेन
बंबई—४०० ००२

३ " सिटी पुलिस जोधपुर (राजस्थान)

मूल्य 3-५0

७३५

तृतीयावृत्ति २०००

वीर संवत् २५०७
विक्रम संवत् २०३७
मार्च सन् १९८१

मुद्रक—श्री जैन प्रिंटिग प्रेस, सैलाना (म. प्र.)

संग्राहक का निवेदन
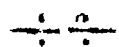
प्रकाशकीय निवेदन

तत्त्वज्ञान की शिक्षा विद्यार्थियो को प्रारम्भ से ही दी जाती रहे, तो व्यवहारिक शिक्षा के साथ धार्मिक ज्ञान भी वृद्धिगत होता रहे। परन्तु वर्तमान समय मे थोकज्ञान लुप्त-सा होने लगा है, थोकडे सीखने की रुचि नहीवत् हो गई। गृहस्थो की तो कौन कहे, कई साधु भी इस मातृ-शिक्षा से वचित है। कई तो दीक्षित होते ही प्रखर वक्ता व कलमबाज बनने की चिंता मे पड जाते हैं। उन्हे तत्व-ज्ञान अनावश्यक सा लगता है। फिर गृहस्थ विद्यार्थियो की तो बात ही क्या ? तत्त्वज्ञान के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिये विशेष सामग्री की आवश्यकता रही है।

थोकज्ञान के अच्छे व अनुभवी ज्ञाता श्रीमान् धीगडमलजी सा गिडिया का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और आपने तत्त्वज्ञान से सम्बन्धित विशेष सामग्री का सकलन कर 'जैन सिद्धात थोक संग्रह' पुस्तक का रूप प्रदान किया।

थोकज्ञान के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिये और तात्विक जानकारी बढाने के लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। आपका यह शुभ प्रयास अभिवदनीय एव प्रशमनीय है।

इस आवृत्ति के विषय में

दृढधर्मी प्रियधर्मी तत्वज्ञ सुश्रावक श्रीमान् धीगड़मलजी सा का यह प्रयास सफल रहा है। विद्यार्थियो मे थोक ज्ञान सीखने की रुचि वढ़ी है। इसका यह प्रमाण है कि जैन सिद्धात

विषयानुक्रमणिका–

D

॥ श्री ॥

संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का १६ वां रत्न

जैन सिद्धांत थोक संग्रह

भाग १

सिद्ध भगवान् के आठ गुण

१ अनन्त ज्ञान २ अनन्त दर्शन ३ अव्याबाध सुख ४ क्षायिक सम्यक्त्व ५ अक्षय स्थिति (अमरत्व—सदा काल स्थिर) ६ निराकारत्व—अरूपी ७ अगुरुलघु और ८ अनन्त शक्ति ।

मार्गानुसारी के ३५ गुण

साधारणतया पूर्वाचार्यों ने सम्यक्त्व प्राप्ति की सुलभता उन मनुष्यों में मानी है कि जिनका गृहस्थ जीवन अनिन्दनीय हो। इस प्रकार की दशा को 'मार्गानुसारिता' के नाम से बताया गया है। मार्गानुसारी के ३५ गुण इस प्रकार बताये गये हैं।

१ न्याय सम्पन्न विभव–जिसकी आजीविका के साधन, न्याय के अनुकूल तथा सच्चाई से युक्त हो ।

२ शिष्टाचार प्रशसक–जिसका आचरण उत्तम लोग करते हैं, उस आचार की प्रशसा करना । लोकापवाद से डरना, दुखियो की सेवा करना ।

३ समान कुल-शील वाले अन्य गोत्रीय के साथ विवाह सम्बन्ध करना ।

४ पाप भीरु–पाप जनक कार्यों से डर कर अलग रहना ।

५ प्रसिद्ध देशाचार का पालक–खान, पान, वेशभूषा, भाषा आदि का पालन, अपने देश के उत्तम व्यक्तियो द्वारा मान्य हो वैसा ही करना ।

६ अवर्णवाद त्याग–पर निन्दा का त्यागी होना ।

७ घर की व्यवस्था–रहने के लिए घर ऐसा हो कि जिसमे चोरो अथवा दुराचारियो का प्रवेश सुगम नही हो सके । पडोसी भी भले और उत्तम हो ।

८ सत्सग–भले और सदाचारियो की संगति करना और दुराचारियों से दूर रहना ।

९ माता-पिता की सेवा करना–यह सबसे पहला सदाचार है ।

१० उपद्रव युक्त स्थान का त्याग करना ।

११ घृणित–निन्दनीय कृत्य नही करना ।

१२ आय के अनुसार व्यय करे अर्थात् आमदनी से अधिक खर्च नही करना ।

१३ अपना वेश, देश, काल और अपनी आर्थिक स्थिति

के अनुसार रखना ।

१४ बुद्धिमान होना ।

१५ प्रतिदिन धर्म श्रवण करना ।

१६ अजीर्ण होने पर भोजन नही करना ।

१७ यथासमय भोजन करना ।

१८ अबाधित त्रिवर्ग साधन—अर्थ और काम की इस प्रकार साधना नही करे जिससे कि धर्म बाधित हो ।

१९ साधु और दीन अनाथो को दान देना ।

२० दुराग्रह से रहित होना ।

२१ गुण पक्षपात—गुणवानो, सदाचारियो, धर्मीजनो और सज्जनो तथा अहिंसा, सत्यादि सद्गुणो का पक्ष करना ।

२२ निषिद्ध देशादि मे नही जाना ।

२३ अपनी शक्ति को तोल कर कार्य मे प्रवृत्ति करना ।

२४ वृत्तस्थ ज्ञानवृद्धो की पूजा ।

२५ पोष्य पोषक—माता, पिता, पत्नी, पुत्रादि और आश्रित-जनो का पोषण करना ।

२६ दीर्घदर्शी—दूरदर्शितापूर्वक, भावी हानि-लाभ का विचार कर के कार्य करना ।

२७ विशेषज्ञ—अपना ज्ञान बढ़ा कर कार्य-अकार्य, एवं हेय उपादेय के विषय में अनुभव बढ़ाना ।

२८ कृतज्ञ—अपने पर किये हुए उपकारो को सदा याद रख कर उनका आभार मानते रहना ।

२९ लोकवल्लभ—विनय, सेवा, सदाचारादि से लोक-प्रिय होना ।

३० लज्जाशील–लज्जावान् होना।

३१ सदय–दु खी प्राणियो के दु ख देख कर हृदय का कोमल होना और उनके दु ख दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करना।

३२ सौम्य–सदैव शान्त स्वभाव और प्रसन्न रहना।

३३ परोपकार कर्मठ–दूसरों की भलाई करने मे सदैव तत्पर रहना।

३४ क्रोध, लोभ, मद, मान, काम और हर्ष–इन छः अन्तरग शत्रुओ का यथा-सभव त्याग करना।

३५ इन्द्रिय जय–इन्द्रियो पर यथाशक्ति अंकुश रखना।

श्रावक का वचन व्यवहार

श्रमणोपासक का वचन व्यवहार उत्तम प्रकार का होता है। इसके आठ नियम इस प्रकार हैं।

१ श्रावकजी थोडा बोले।

२ " आवश्यकता होने पर बोले।

३ " मीठा बोले।

४ " चतुराई पूर्वक अवसर के अनुसार बोले।

५ " अहकार रहित वचन बोले।

६ " मर्म खोलने वाला एवं आघात-जनक वचन नहीं बोले।

७ " सूत्र-सिद्धात के न्याययुक्त बोले।

८ " सभी जीवों के लिए हितकारक वचन बोले।

श्रावकजी के २१ गुण

जिनेश्वर भगवत के प्रियधर्मी दृढधर्मी उपासक मे नीचे लिखे २१ गुण होते हैं।

१ श्रावकजी नव तत्त्व और पच्चीस क्रिया के जानकार होवे।

२ " धर्म आराधना मे किसी की सहायता की इच्छा नही करे।

३ " धर्म पर दृढ रहे। यदि कोई धर्म से डिगाना चाहे, तो डिगे नही।

४ " श्री जिन धर्म मे शका नही करे, परदर्शन की इच्छा नही करे और करनी के फल मे सन्देह नही लावे।

५ " सूत्र, अर्थ और दोनो को प्राप्त करने वाले, ग्रहण करने वाले, पूछ कर निश्चित करने वाले और रहस्य ज्ञान प्राप्त करने वाले होवे।

६ " की धर्मरुचि इतनी गहरी हो कि जिसका प्रभाव, रक्त और मास पर ही नहीं, हड्डियें और मज्जा तक मे व्याप्त हो जाय।

७ " निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही सार है, अर्थ है और परमार्थ है। शेष सभी बातें, सभी वस्तुएँ और सभी संयोग अनर्थ हैं। ऐसी दृढ श्रद्धा रखे और धर्म-बन्धुओं मे चर्चा करे।

८ " कूड कपट, ठगाई, अन्याय, अनीति एव अनाचार से दूर रह कर अपना जीवन एव आजीविका न्याय,

नीति, सदाचार और धर्म-साधना से निर्मल एवं स्वच्छ रखे।

९ श्रावकजी दान के लिए अपने घर के द्वार खुले रखे।

१० " प्रति मास दोनो पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या, इस प्रकार छह पोषध करे।

११ " के सदाचार की प्रतिष्ठा इतनी व्याप्त हो कि यदि वे धन से भरे हुए भंडारो और महिलाओ के निवास—अत पुर (राजाओं के रनवास) मे भी चले जायँ तो उन पर किसी प्रकार की शका नही हो, उनका विश्वास हो।

१२ " अपने व्रत नियमो का निर्दोष रीति से पालन करे।

१३ " श्रमण-निर्ग्रंथों को भक्तिपूर्वक निर्दोष आहारादि का दान करे।

१४ " धर्म का प्रचार करे। वक्तव्य, लेखन, भाषण आदि से धर्म की वृद्धि करे।

१५ " अल्प इच्छा वाले होवे। लोभ को वश मे रखे।

१६ " अल्प आरम्भ वाले होवे।

१७ " प्रतिदिन तीन मनोरथ का चिन्तन करे।

१८ " गुणवान साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की प्रशंसा करे।

१९ " उभयकाल प्रतिक्रमण करे।

२० " साधर्मी भाई बहिनो की सहायता करे।

२१ " नित्य सामायिक करे, धर्मोपदेश सुने।

(भगवती सूत्र श. २ उ. ५)

श्रमण धर्म

साधु-साध्वियो का आत्म-विकास कर के मुक्ति प्राप्त कराने वाली साधना को 'श्रमण-धर्म' कहते हैं।

इसके दस भेदो का वर्णन स्थानाग सूत्र के १० वे स्थान मे इस प्रकार किया है।

१ क्षमा—क्रोध पर विजय प्राप्त कर शात रहना।

२ मुक्ति—लोभ—लालच से मुक्त रहना।

३ आर्जव—माया—कपट का त्याग कर सरल बनना।

४ मार्दव—मान—अहंकार का त्याग कर नम्र होना।

५ लाघव—लघुता—हलकापन। वस्त्रादि बाह्य उपधि और संसारियो के स्नेह रूपी आभ्यतर भार से हलका रहना।

६ सत्य—असत्य से सर्वथा दूर रहना और आवश्यक हो तब सत्य एव हितकारी वचनो का व्यवहार करना।

७ सयम—मन, वचन और काया की सावद्य प्रवृत्ति का त्याग करना।

८ तप—इच्छा का निरोध कर बारह प्रकार का सम्यक् तप करना।

९ त्याग—परिग्रह और सग्रह वृत्ति से मुक्त रहना।

१० ब्रह्मचर्य—नववाड सहित विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करना।

प्राथमिक प्रश्नोत्तर

प्रश्न	उत्तर
१ अरिहंत कौन है ?	१ चार घनघाती कर्मों को नष्ट करने वाले परम वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी।
२ सिद्ध " "	२ जिनके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो चुके हो, ऐसे मोक्ष प्राप्त परमेश्वर।
३ वीतराग " "	३ जिनके राग-द्वेष नष्ट हो चुके।
४ भगवंत " "	४ भव-भ्रमण (जन्म-मरण) का अन्त करने वाले।
५ शूरवीर " "	५ जो उत्पन्न परीषह (उपद्रव-विपत्ति) को सहन करे।
६ श्रमण " "	६ संयम और तप मे श्रम करे, विषय-वासना का शमन करे और समभाव युक्त रहे।
७ निर्ग्रंथ " "	७ कनक और कामिनी के त्यागी, परिग्रह के सर्वथा त्यागी।
८ भिक्षु " "	८ निर्दोष भिक्षा करने वाले।
९ अनगार "	९ जिन्होंनें अपने घर का त्याग कर दिया हो।
१० यति " "	१० इन्द्रियो को वश मे रखने वाले।

११ मुनि कौन ?	११ अधर्म के कार्यों मे मौन रहने वाले।
१२ पडित " "	१२ पाप से डरने वाले
१३ ऋषीश्वर" "	१३ समस्त जीवो के रक्षक।
१४ योगीश्वर" "	१४ जो मन, वचन और काया के योगो को वश मे रखे।
१५ दयालु " "	१५ दुखी जीवो पर दया करे।
१६ दानेश्वर " "	१६ अभय और सुपात्र दान देने मे उदार हृदय।
१७ ब्रह्मचारी" "	१७ नव वाड युक्त ब्रह्मचर्य पाले
१८ साधु " "	१८ आत्म-हित की साधना करे।
१९ स्थविर " "	१९ स्व-पर को धर्म मे स्थिर करे।
२० गणधर " "	२० गण एव गुणो को धारण करे।
२१ पुत्र " "	२१ माता-पिता का आज्ञाकारी हो।
२२ शिष्य " "	२२ गुरु की आज्ञा का पालन करे।
२३ भार्या " "	२३ गृह व्यवस्था के भार का वहन करे।
२४ मित्र " "	२४ दु ख-सुख मे पूर्ण रूप से साथ देने वाला।
२५ तपस्वी " "	२५ आत्मा के लगे कर्मों की निर्जरा के लिए तप करने वाला।
२६ जैनी " "	२६ जिनेश्वर भगवंत का उपासक।
२७ श्रावक" "	२७ जिनवाणी सुनने का रसिक।
२८ श्रमणोपासक	२८ निर्ग्रंथ-श्रमणो की उपासना करने वाला।

२९ व्रत्ती कौन है ? — २९ पापो का त्याग करने वाला।

३० मार्गानुसारी " — ३० सदाचार का पालन करने वाला।

गुरु-शिष्य के प्रश्नोत्तर

शिष्य गुरुदेव से प्रश्न करता है और गुरुदेव शिष्य को उत्तर देते हैं।

१ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे तो पानी बहुत है ?
उत्तर—हे शिष्य ! इस समुद्र से भी अधिक संसार रूपी समुद्र मे, मोह रूपी पानी भरा है।

२ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे कीचड बहुत है ?
उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे काम-भोग रूपी कीचड बहुत है।

३ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे तो वेल है ?
उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे तृष्णा की वेल, उससे भी बडी है।

४ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे बड़े-बडे पाताल कलश है ?
उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे कषाय रूपी पाताल कलश उससे भी बहुत बड़े हैं।

५ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे तो फेन होता है ?
उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे अहंकार रूपी फेन विशाल है।

६ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे मच्छ-कच्छ बहुत हैं ?
उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे भी कुटुम्ब रूपी

मच्छ-कच्छ हैं।

७ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे बडे-बडे मगर-मच्छ हैं ?

उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे राजा आदि भी बडे-बडे मगर-मच्छ जैसे हैं।

८ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे तो पहाड भी है ?

उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे, आठ कर्म भी पहाड के समान हैं।

९ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे शख-शीप आदि भी हैं ?

उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे भी ३६३ पाखड रूप शख-शीप हैं।

१० प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे मणि, रत्न, मोती, मुगा आदि है ?

उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे भी जिनेश्वर भगवंत की वाणी रूप रत्न, मणि, मोती आदि हैं।

११ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र मे तो द्वीप है ?

उत्तर—हे शिष्य ! ससार-समुद्र मे भी धर्म रूपी द्वीप है।

१२ प्रश्न—हे भगवन् ! समुद्र के किनारा है ?

उत्तर—हे शिष्य ! ससार समुद्र मे मोक्ष रूपी किनारा है।

× × × × ×

१ दीजे दान, २ लीजे यश, ३ कीजे परोपकार, ४ खाइजे गम, ५ पीजे प्रेम-रस, ६ पालजे शील, ७ टालजे कुसगत, ८ छोडजे पाप, ९ आदरजे धर्म, १० ध्याइजे अरिहत देव, ११ सेवजे निर्ग्रंथ गुरु और १२ रमजे स्वाध्याय ध्यान मे।

मूल

जिससे वस्तु की तथा गुण या दोष की उत्पत्ति हो, उसे 'मूल' कहते हैं। मूल ही विकसित होकर फल वनता है।

१ समस्त गुणो का मूल विनय है।
२ सभी रसो का मूल पानी है।
३ सभी पापो का मूल लोभ है।
४ सभी धर्मो का मूल दया है।
५ सभी कलह का मूल हँसी है।
६ सभी रोगो का मूल अजीर्ण है।
७ सभी प्रकार के मरण का मूल शरीर है।
८ सभी बन्धनो का मूल स्नेह है।

नहीं

१ क्रोध के समान विष नही।
२ क्षमा के समान अमृत नही।
३ लोभ के समान दु ख नही।
४ सतोष के समान सुख नही।
५ पाप के समान वैरी नही।
६ धर्म के समान मित्र नही।
७ कुशील के समान भय नही।
८ शील के समान शरणभूत नही।

श्रृंगार

१ शरीर का श्रृंगार शील, २ शील का श्रृंगार तप,
३ तप का " क्षमा, ४ क्षमा का " ज्ञान,
५ ज्ञान का " मौन, ६ मौन का " शुभ ध्यान
७ शुभ ध्यान " सवर ८ सवर का " निर्जरा,
९ निर्जरा का " केवलज्ञान १० केवलज्ञान " अक्रिया,
११ अक्रिया " मोक्ष और १२ मोक्ष का " अव्याबाध सुख।

महा पापी

१ आत्म-घाती	महापापी
२ विश्वास-घाती	"
३ गुरु-द्रोही	"
४ कृतघ्नी	"
५ झूठी सलाह देने वाला	"
६ झूठी साक्षी देने वाला	"
७ हिंसा मे धर्म बताने वाला	"
८ सरोवर की पाल तोडने वाला	"
९ दव लगाने वाला	"
१० हराभरा वन कटाने वाला	"
११ बाल-हत्या करने वाला	"
१२ सती-साध्वी का शील-भंग करने वाला	"

व्यसन

जिन कुटेवो—बुरी आदतो के कारण मनुष्य का पतन होता है, सदाचार एवं धर्म से विमुख बनता है, जिनके कारण मनुष्य का विश्वास नष्ट होता है, जो सज्जनो के लिए त्याज्य है और जिन दुराचारो से मनुष्य-जन्म बिगड़ कर नरकादि दुर्गति का पात्र बनता है, उन कुटेवो को 'व्यसन' कहते है। व्यसन सात हैं।

१ द्युत—जूआ खेलना। पासे या पत्ते आदि के खेल पर हार-जीत का दाव लगाना।

२ मास-भक्षण, ३ मदिरा पान, ४ वेश्या गमन, ५ शिकार खेलना, ६ चोरी करना और ७ पराई स्त्री के साथ गमन करना।

उपरोक्त सात व्यसन में लुब्ध मनुष्य, नरक-गति मे जाता है।

बल

श्री स्यानाग सूत्र स्थान १० मे दस प्रकार का वल इस प्रकार कहा है—

१ श्रोतेन्द्रिय वल—सुनने की शक्ति का वलवान् होना, २ चक्षुरिन्द्रिय वल, ३ घ्राणेन्द्रिय वल, ४ रसनेन्द्रिय वल, ५ स्पर्शनेन्द्रिय वल, ६ ज्ञान वल, ७ दर्शन वल, ८ चारित्र वल, ९ तप वल और १० वीर्य वल।

शस्त्र

जिसके द्वारा जीव की घात हो, वह 'शस्त्र' कहलाता हैं। शस्त्र के भेदो का वर्णन स्थानाग सूत्र स्थान १० मे है। यथा-

१ अग्नि-यह स्वकाय और पर-काय के लिए शस्त्र रूप है।

२ विष-सोमिल आदि स्थावर विष और सर्प आदि का जगम विष।

३ लवण-नमक, यह वनस्पति आदि के लिए शस्त्र रूप है और तीव्र नमक त्रस जीवो के लिए भी शस्त्र रूप हो जाता है।

४ स्नेह-तेल, घृत आदि जिसमे गिरकर जीव मर जाते हैं।

५ क्षार-भस्म आदि। यह भी लवण की तरह जीवो के लिए शस्त्र है और दुरुपयोग से धातुओ की भस्मे मनुष्य के लिए हानिकारक हो जाती है।

६ अम्ल-खटाई। यह भी इसी प्रकार शस्त्र रूप है।

ये छह भेद द्रव्य शस्त्र के हैं। शेष चार भेद भाव शस्त्र के इस प्रकार हैं।

७ दुष्प्रयुक्त मन-बुरी तरह, दुष्ट प्रकार के विचार भी घातक होते हैं। इससे आत्मा का बहुत अहित होता है। नरकादि दुख का कारण बनता है और आत्म-हत्या का भी निमित्त हो सकता है।

८ दुष्प्रयुक्त वचन-दुष्ट वचन प्रयोग से स्व और पर की घात हो जाती है।

९ दुष्प्रयुक्त काया-शरीर की दुष्प्रवृत्ति से स्व-पर का घात हो जाता है।

१० अविरति भाव–अविरति–पाप से निवृत्त नही होना भी स्वपर के लिए घातक है।

गति

गमन करने की क्रिया को 'गति' कहते है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना 'गति' है। जीव एक गति का आयुष्य पूर्ण कर दूसरी गति मे जावे उसे 'गति' कहते हैं। गति के दस प्रकार श्री स्थानांग सूत्र स्थान १० मे दिये हैं। वे इस प्रकार हैं।

१ नरक गति–नैरयिक पर्याय रूप गति।

२ नरक विग्रह गति–नरक क्षेत्र की ओर जाने की ऋजु अथवा वक्र गति।

३ तिर्यञ्च गति, ४ तिर्यंच विग्रह गति, ५ मनुष्य गति, ६ मनुष्य विग्रह गति, ७ देव गति, ८ देव विग्रह गति, ९ सिद्ध गति और १० सिद्ध विग्रह गति*।

---

* गति–नरकादि गति में पहुँचे हुए–गति प्राप्त जीवो को यहाँ नरक आदि गति रूप वतलाये है और जो जीव ऋजु या वक्रगति से मार्ग में चल रहे है, उनके लिए 'विग्रह गति–नरक विग्रह गति आदि वतलाये है।

सिद्धो में वक्रगति का अभाव है, उनकी ऋजुगति ही होती है, अतः सिद्ध-विग्रहगति का अर्थ–'ऋजुगति से वाटे वहते सिद्ध' होता है। यह भगवती श १४ उ. ५ से स्पष्ट होता है।

दान

अपनी वस्तु दूसरो को देना 'दान' कहलाता है। स्थानाग सूत्र स्थान १० मे दान के दस भेद इस प्रकार बताये हैं।

१ अनुकम्पा दान—किसी दुखी पर अनुकम्पा ला कर भोजनादि देना।

२ सग्रह दान—किसी से सहायता प्राप्त करने के लिए दिया जाने वाला दान।

३ भय दान—राजा आदि बलवान् के भय से दिया हुआ।

४ कारुण्य दान—प्रियजन के वियोग से दुखित होकर देना।

५ लज्जा दान—लज्जा के वश होकर देना।

६ गौरव दान—यश प्राप्ति की इच्छा से देना।

७ अधर्म दान—जिससे अधर्म हो, या अधर्म का समर्थन हो वैसा दान।

८ धर्म दान—जिसमे धर्म की वृद्धि एव पुष्टि हो। सुपात्र दान।

९ करिष्यति दान—प्रत्युपकार की आशा से दिया जाय।

१० कृत दान—उपकार का बदला चुकाने के लिए दिया जाने वाला दान।

पुण्यवान् को प्राप्त उत्तम सामग्री

उत्तराध्ययन अ ३ गा १७, १८ मे पुण्यवान् जीवो को प्राप्त होने वाली दस प्रकार की उत्तम सामग्री का वर्णन किया गया है। जो जीव, धम-साधना कर के देवलोक मे जाते हैं, वे

देवलोक के सुख तो भोगते ही हैं, परन्तु वहाँ का आयु पूर्ण कर के मनुष्य-भव मे आते हैं, उन्हे पुण्य के फलस्वरूप उत्तम सामग्री प्राप्त होती है। वह इस प्रकार है।

१ क्षेत्र–१ ग्रामादि उत्तम स्थान, २ वास्तु–रहने का भवन, ३ चाँदी सोना आदि उत्तम धातुएँ, ४ पशु–गाये, भैसे, घोडे आदि और नौकर चाकर। इन चार स्कन्धो (समूहो) से भरपूर कुल मे उत्पन्न होने का योग मिलता है।

२ अच्छे मित्रो का योग।

३ अच्छे सगे-सम्बन्धियो का मिलना।

४ ऊँच गोत्र–आदरणीय एव अच्छा खानदान।

५ कान्तिवान् शरीर।

६ आरोग्य शरीर।

७ तीव्र एव विमल बुद्धि।

८ विनयवान–विनीत–सबको प्रिय लगने वाला।

९ यशस्वी–जिनकी प्रशंसा व्यापक हो।

१० बलवान्–शक्तिशाली हो।

मुण्डन

मुण्डन = त्याग, अपने साथ लगे हुए दोषो–विकारो को छोडना 'मुण्डन' कहलाता है। इसके दस भेदो का वर्णन स्थानाग सूत्र के १० वे स्थान मे इस प्रकार किया है।

१ श्रोतेंद्रिय मुण्डन–शब्द सबधी विषय के विकारो को हटाना।

२ चक्षुरिन्द्रिय मुण्डन–रूप " " "

३ घ्राणेन्द्रिय मुण्डन—गन्ध सबधी विषय विकारो को हटाना ।

४ रसनेन्द्रिय मु०—रस (स्वाद) " विकारो को हटाना

५ स्पर्शनेन्द्रिय मु०—स्पर्श " " "

६ क्रोध मु० क्रोध को छोडना ।

७ मान मु०—मान का त्याग ।

८ माया मु०—कपटाई का त्याग ।

९ लोभ मु०—लोभ—लालच एव आसक्ति छोडना ।

१० सिर मु०—मस्तक के बाल मुडा कर प्रव्रजित होना ।

उपरोक्त दस प्रकार के मुण्डन से ही पवित्रता आ कर साधुता प्राप्त होती है । जब तक नौ प्रकार से भाव-मुण्ड नही हो जाते तब तक सिर मुण्डन से साधुता सम्वन्धी कोई लाभ नही होता ।

धर्म

ग्राम-नगरादि के लोगो का सद् कर्त्तव्य, नीति, रीति और साधुओ के आचार-विचार को 'धर्म' कहते हैं । स्थानाग सूत्र स्थान १० मे धर्म के दस भेद इस प्रकार वतलाये है ।

१ ग्राम धर्म—ग्राम की सुव्यवस्था एव रीति-नीति ।

२ नगर धर्म—नगर की " "

३ राष्ट्र धर्म—राष्ट्र की रीति, व्यवस्था और आचार ।

४ पाखण्ड धर्म—विविध प्रकार के मतावलम्वियो का आचार-विचार ।

५ कुल धर्म—कुल अथवा गच्छ सम्बन्धी आचार ।

६ गण धर्म—दो तीन आदि कुल से बने हुए गण का आचार ।

७ सघ धर्म—कुछ गणो को मिला कर बनाये हुए सघ अथवा समूह का आचार।

८ श्रुत धर्म—आचारागादि सम्यक् श्रुत का श्रद्धान, स्वाध्यायादि धर्म ।

९ चारित्र धम—कर्म-मल को नष्ट कर आत्मा की पवित्रता बढाने वाला चारित्र धर्म ।

१० अस्तिकाय धर्म—धर्मास्तिकाय आदि पाच अस्तिकायो का गुण—स्वभाव ।

स्थविर

स्थविर जो जनता को कुमार्ग एवं दु ख-दायक स्थिति से उबार कर, सुमार्ग मे जोडे, सुखदायक स्थिति की ओर ले जाए, सन्मार्ग मे स्थापित करे, उसे 'स्थविर' कहते हैं। स्थविर दस प्रकार के होते है ।

१ ग्राम स्थविर—ग्राम का वह प्रभावशाली नेता, जिसका प्रभाव ग्राम्यजनो पर पडता है और जो ग्राम-हित के कार्य करता है ।

२ नगर स्थविर—नगर का प्रभावशाली व्यक्ति, जो नगर के हित मे प्रवृत्त रहता है।

३ राष्ट्र स्थविर–राष्ट्र का माननीय नेता।

४ प्रशास्तृ स्थविर–धर्मोपदेशक।

५ कुल स्थविर–लौकिक या लोकोत्तर कुल [illegible] करने वाला। कुल की उत्तम व्यवस्था की रक्षा करने वाला और उत्तम व्यवस्था को भग करने वाले को दड देनेवाला।

६ गण स्थविर–कुछ कुलो को मिला कर 'गण' बनता है, ऐसे गण का व्यवस्थापक 'गण स्थविर' कहलाता है।

७ सघ स्थविर–कुछ गणो को मिला कर 'सघ' बनता है। ऐसे सघ के व्यवस्थापक को 'सघ स्थविर' कहते हैं।

८ जाति स्थविर–साठ वर्ष की उम्र वाला।

९ श्रुत स्थविर–श्रुत के ज्ञाता (आचाराग और सूत्रकृताग के अतिरिक्त) स्थानाग और समवायाग सूत्र के धारक।

१० पर्याय स्थविर–बीस वर्ष से अधिक दीक्षा-पर्याय वाले अनुभवी श्रमण (स्थानाग सूत्र स्था १०)।

सुख

जो आनन्दप्रद हो, अनुकूल हो, जिससे प्रसन्नता रहे, वह 'सुख' कहलाता है। सुख के दस भेद स्थानाग सूत्र के दसवें स्थान में बताये हैं। जैसे–

१ आरोग्य–शरीर की निरोगता।

२ दीर्घ आयु–लम्बे काल तक का सुखी जीवन।

४ काम–प्रीतिकारक शब्द और रूप की प्राप्ति ।
५ भोग–शुभ गन्ध रस और स्पर्श की प्राप्ति ।
६ सतोष–थोडे मे सतोप करना–अल्प इच्छा ।
७ अस्ति–जब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, तब वह मिल जाय ।
८ शुभ भोग–अनिन्दित भोग ।
९ निष्क्रमण–संसार की जजाल से निकल कर सयममय सुखी जीवन प्राप्त करना ।
१० अनाबाध–मोक्ष के शाश्वत एवं परम सुख ।

रोगोत्पत्ति के कारण

शरीर मे किसी प्रकार के विकार का उत्पन्न होना–'रोग' कहलाता है। रोग की उत्पत्ति के नौ कारण स्थानाग सूत्र स्थान ९ में इस प्रकार लिखे हैं।

१ अत्यासन–अधिक बैठने से, अथवा अति अशन–अधिक खाने से ।
२ अहितासन–आरोग्य के प्रतिकूल आसन से बैठने से अथवा अपथ्यकारी आहार करने से ।
३ अति निद्रा–अधिक नीद लेने से ।
४ अति जागरण–अधिक जागते रहने से ।
५ उच्चार निरोध–बडीनीति रोकने से ।
६ प्रस्रवण निरोध–लघुनीति–मूत्र रोकने से ।

७ मार्ग गमन—अधिक चलने से, या निरन्तर चलते रहने से।
८ भोजन प्रतिकूलता—अपनी प्रकृत्ति के प्रतिकूल भोजन से।
९ इन्द्रियार्थ विकोपन—इन्द्रियो के विकार से। विषयो मे अति गृद्ध रहने से।

समाचारी

साधु-साध्वी के चारित्र आराधना के आवश्यक नियमो को 'समाचारी' कहते हैं। समाचारी दस प्रकार की है।

१ आवश्यकी—आवश्यक कार्य के लिए उपाश्रय से वाहर जाते समय तीन वार 'आवश्यकी' कहे।
२ नैषेधिकी—कार्य कर के वापिस आने पर 'नैषेधिकी' कहे।
३ आपृच्छना—गुरु आदि से पूछ कर कार्य करे।
४ प्रतिपृच्छना—दूसरो का कार्य करने का पूछना।
५ छन्दना—आहारादि के लिए दूसरे मुनियो को पूछना—"छदना" समाचारी हैं।
६ इच्छाकार—दूसरो की इच्छानुसार कार्य करना "इच्छाकार" समाचारी है।
७ मिथ्याकार—दोष लगने पर आत्म-निन्दा करना "मिथ्याकार" है।
८ तथाकार—गुरुजनो के वचनो को स्वीकार करना "तथाकार" है।

९ अभ्युत्थान—गुरुजनो की विनय-भक्ति करना और वाल वृद्ध तथा रोगी साधुओ की आहारादि से सेवा करने मे तत्पर रहना "अभ्युत्थान" समाचारी है।

१० उपसम्पदा—विशेष ज्ञानादि के लिए दूसरे गच्छ मे, विशेष ज्ञानी के समीप रहना "उपसम्पदा" नाम की दसवी समाचारी है।

यह समाचारी उत्तराध्ययन अ. २६ के अनुसार है। स्थानांग सूत्र स्थान १० मे क्रम-भेद है और ९ वी 'अभ्युत्थान' समाचारी के स्थान पर 'निमन्त्रणा' समाचारी है। जिसका अर्थ है—'आहार लाने के लिए निमन्त्रण देना या पूछना कि—आपके लिए क्या लाऊँ ?'

प्रव्रजित होने के कारण

ससार का त्याग करने मे होने वाले निमित्त का वर्णन स्थानाग सूत्र स्थान १० मे इस प्रकार है।

१ छन्द—अपने या दूसरे की इच्छा से दीक्षा लेना—'छन्द प्रव्रज्या' है।

२ रोष—किसी पर क्रोध कर के दीक्षा लेना।

३ परिद्यूना—दारिद्रय अर्थात् गरीबी के कारण दीक्षा लेना।

४ स्वप्न—विशेष प्रकार का स्वप्न आने से दीक्षा लेना।

५ प्रतिश्रुत—किसी के वचन सुन कर आवेश मे आकर

दीक्षा लेना।

६ स्मारण—किसी के द्वारा स्मरण कराने से या कोई दृश्य देखने से जातिस्मरण ज्ञान होना और पूर्वभव को जान कर दीक्षा लेना।

७ रोगिणिका—रोग के कारण ससार से विरक्त हो जाने पर ली गई दीक्षा।

८ अनादर—किसी के द्वारा अपमानित होने पर ली गई दीक्षा। अथवा मन्द उत्साह से ली गई दीक्षा।

९ देव सज्ञप्ति—देव के द्वारा प्रतिबोध देने पर ली गई दीक्षा।

१० वत्सानुबन्धिका—पुत्र-स्नेह के कारण ली गई दीक्षा।

चित्त-समाधि के स्थान

वाणिज्यग्राम नगर के दूतिपलास चैत्य मे त्रिलोकपूज्य भगवान् महावीर प्रभु ने निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथियो को सम्बोधित करते हुए कहा—

जो आत्मार्थी, आत्महितैषी, आत्म-योगी, आत्मपराक्रमी, पाक्षिक पौषध* करने वाले, स्वाध्याय तप आदि से समाधि प्राप्त करने वाले और धर्मध्यान करने वाले मुनि हैं, उन्हे

* पूर्णिमा और अमावस्या को चौविहार उपवास करके विशेष रूप से धर्म की आराधना करके आत्मा का पोषण करना—निर्ग्रंथो के लिए भी आवश्यक है। पाक्षिक के अर्थ में उपलक्षण से अष्टमी, चतुर्दशी आदि भी लेते हैं।

पहले कभी उत्पन्न नही हुई-ऐसी अपूर्व आत्म--समाधि उत्पन्न होती है। उस आत्म-समाधि के दस भेद दशाश्रुतस्कन्ध दशा ५ मे इस प्रकार हैं।

१ धर्म-चिन्तन करने से, पहले कभी उत्पन्न नही हुई ऐसी धर्म-भावना उत्पन्न होती है और उससे वह क्षमा आदि धर्म तथा जीवादि तत्त्वो को जान लेता है। इससे चित्त मे समाधि होती है।

२ धर्म-चिन्तन करते हुए यदि अपूर्व शुभ और यथार्थ फलदायक स्वप्न-दर्शन᪥ हो जाय।

३ धर्म-चिन्तन करते हुए अभूतपूर्व जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और इससे अपने पूर्वभवो को देखकर चित्त०।

४ यदि अपूर्व देव-दर्शन हो जाय और उसकी देवलोक सम्बन्धी ऋद्धि, प्रभाव और दिव्य सुखो के कारणभूत धर्म का विचार करे तो।

५ धर्म-चिंतन से क्षयोपशम भाव की वृद्धि होकर अपूर्व अवधिज्ञान की प्राप्ति हो जाय, तो उससे प्रत्यक्ष रूप से लोक का स्वरूप जानने से।

६ अवधिदर्शन उत्पन्न होने पर लोक का स्वरूप प्रत्यक्ष देखने से।

७ आत्मलीनता बढते हुए अपूर्व ऐसे मन पर्यवज्ञान की

᪥ जिस प्रकार भ० महावीर स्वामी को छद्मस्थता की अतिम रात्रि में दस स्वप्न आये थे।

प्राप्ति हो जाय तो।

८ धर्म-ध्यान मे बढते हुए शुक्ल-ध्यान मे प्रवेश कर जाय और क्षपक-श्रेणी प्रारम्भ कर ले, तो घातिकर्मों को नष्ट करके अपूर्व एव अद्वितीय ऐसे केवलज्ञान को प्राप्त कर लोकालोक के स्वरूप को जान लेते है।

९ अपूर्व केवलदर्शन से लोकालोक देखने से।

१० केवलज्ञान और केवलदर्शन सहित आयुष्य पूर्ण होने पर निर्वाण हो जाता है और समस्त दुखो का सदा लिए अत हो जाता है।

श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा

(श्री प्रज्ञापना सूत्र के सातवे पद के आधार पर)

नारकी के नेरिये, आभ्यतर—ऊँचा श्वास, नीचा श्वास और बाह्य—ऊँचा श्वास, नीचा श्वास, लोहार की धमण की तरह निरन्तर लेते हैं।

भवनपति देवो मे असुरकुमार देव जघन्य ७ स्तोक मे और उत्कृष्ट एक पक्ष से कुछ अधिक समय मे श्वासोच्छ्वास लेते हैं। शेष नव निकाय के देव और व्यनर जाति के देव जघन्य ७ स्तोक और उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त्त मे श्वासोच्छ्वास लेते है।

ज्योतिषी देव, जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त्त मे।

वैमानिक देवो मे प्रथम देवलोक के देव जघन्य प्रत्येक मुहूर्त्त और उत्कृष्ट दो पक्ष से।

दूसरे देवलोक के देव ज प्रत्येक मुहूर्त्त झाझेरा, उ दो पक्ष झाझेरा।

तीसरे	"	"	२ पक्ष	" ७ पक्ष ।
चौथे	"	"	२ पक्ष झाझेरा	" ७ पक्ष झाझेरा।
पाँचवे	"	"	७ पक्ष	" १० पक्ष ।
छठे	"	"	१० पक्ष	" १४ पक्ष ।
सातवे	"	"	१४ "	" १७ "
आठवे	"	"	१७ "	" १८ "
नौवे	"	"	१८ "	" १९ "
दसवे	"	"	१९ "	" २० "
ग्यारहवे	"	"	२० "	" २१ "
बारहवे	"	"	२१ "	" २२ "
पहली ग्रैवेयक के देव		"	२२ "	" २३ "
दूसरी	"	"	२३ "	" २४ "
तीसरी	"	"	२४ "	" २५ "
चौथी	"	"	२५ "	" २६ "
पाँचवी	"	"	२६ "	" २७ "
छठी	"	"	२७ "	" २८ "
सातवी	"	"	२८ "	" २९ "
आठवी	"	"	२९ "	" ३० "

नौवी ग्रैवेयक के देव ज. ३० पक्ष और उ ३१ पक्ष मे।
चार अनुत्तर विमान के देव ज ३१ पक्ष, उं. ३३ पक्ष मे।
सर्वार्थ सिद्ध विमान के देव ३३ पक्ष मे श्वासोच्छ्वास लेते है।
पाच स्थावर, तीन विकलेंद्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और

मनुष्य, विमात्रा–अनियत समय से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

योनि का थोकड़ा

प्रज्ञापना सूत्र के नौवे पद मे योनि–जीवो के उत्पत्ति स्थान का वर्णन इस प्रकार है।

योनि तीन प्रकार की है–१ शीत-योनि, २ उष्ण-योनि और ३ मिश्र-योनि। पहली नरक से तीसरी नरक तक शीत योनि के नैरयिक हैं। उन्हें उष्णता की वेदना होती है। चौथी नरक के नेरियो मे शीत-योनि वाले नैरयिक बहुत और उष्ण-योनि वाले थोडे। शीत-योनि वालो को उष्णता की वेदना और उष्ण-योनि वालो को शीत की वेदना होती है।

पाँचवी नरक मे शीत-योनि वाले नेरिये थोडे और उष्ण-योनि वाले अधिक। शीत योनि वालो को उष्ण वेदना और उष्ण-योनि वालो को शीत वेदना होती है।

छठी नरक के नेरिये उष्ण-योनि वाले, उन्हे शीत की वेदना होती है और सातवी नरक के नेरिये भी उष्ण-योनिक नेरिये हैं, उन्हे शीत की महावेदना होती है।

सभी देवो के १३ दडक, सज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय और सज्ञी मनुष्य मे एक मिश्र--शीतोष्ण योनि है।

तेजस्काय की उष्ण-योनि और शेष चारो स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असज्ञी तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय और असज्ञी मनुष्य में तीनो योनियां पाई जाती है।

अल्पबहुत्व--सब से थोड़े जीव मिश्र-योनिक, उनसे उष्ण-योनिक असंख्यात गुण, उनसे अयोनिक (सिद्ध) अनत गुण और उनसे शीत-योनिक अनत गुण।

दूसरे प्रकार से--योनि तीन प्रकार की--१ सचित्त २ अचित्त और ३ मिश्र। नारक और देव के चौदह दडक मे एक अचित्त योनि ही होती है। नारक मे कुंभी और देव मे शय्या। पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय और असज्ञी मनुष्य, इन सभी मे तीनो प्रकार की योनि होती है। सज्ञी तिर्यंच और सज्ञी मनुष्य मे एक मिश्र-योनि पाई जाती है।

अल्पबहुत्व--सबसे थोडे मिश्र-योनिक उनसे अचित्त-योनिक असंख्यात गुण उनसे अयोनिक (सिद्ध) अनन्त गुण और उनसे सचित्त-योनिक अनन्त गुण है।

तीसरे प्रकार से--योनि तीन प्रकार की--१ सवृत्त (ढकी हुई) २ विवृत्त (खुली--प्रकट) और ३ सवृत्त-विवृत्त (कुछ ढकी कुछ खुली)।

नारक व देव के १४ दंडक और ५ स्थावर इन १९ दडको मे एक सवृत्त योनि होती है। तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय और असज्ञी मनुष्य मे एक विवृत्त योनि होती है और सज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय तथा संज्ञी मनुष्य मे संवृत्त-विवृत्त योनि होती है।

अल्पवहुत्व--सव से थोडे सवृत्त-विवृत्त योनिक, उससे विवृत्त-योनिक असख्यात गुण, उनसे अयोनिक अनन्तगुण और उनसे संवृत्त-योनिक अनन्तगुण।

चौथे प्रकार से–योनि तीन प्रकार की–१ कूर्मोन्नता (कछूए की पीठ के समान उठी हुई) २ शंखावर्त्ता (शख के समान आवर्त वाली) और ३ वशीपत्रा (बास के दो पत्ते की तरह सपुट मिले हुए)।

कूर्मक योनि ५४ उत्तम पुरुपो की माता के होती है। शखावर्त्त योनि, चक्रवर्ती की श्रीदेवी के होती है, जिसमे जीव उत्पन्न होते और मरते हैं, किन्तु सन्तान के रूप मे जन्म नही लेते। वशीपत्रा योनि सभी संसारी जीवो की माताओ के होती है, जिसमे जीव जन्म लेते भी हैं और नही भी लेते।

संज्ञा का थोकड़ा

श्री प्रज्ञापना सूत्र के आठवे पद मे सज्ञा का अधिकार आया है। सज्ञा–आहारादि की इच्छा–लगन। सज्ञा १० प्रकार की है। यथा–१ क्रोध-सज्ञा २ मान ३ माया ४ लोभ ५ आहार ६ भय ७ मैथुन ८ परिग्रह ९ ओघ-संज्ञा और १० लोक-संज्ञा। समुच्चय जीव २४ दडक मे दस ही संज्ञा पाई जाती है।

नरक मे सब से थोडे मैथुन-सज्ञावाले, उनसे आहार-सज्ञा वाले सख्यात गुण, और उनसे परिग्रह-सज्ञावाले संख्यात गुण और उनसे भय-सज्ञावाले संख्यात गुण।

तिर्यंच मे सबसे थोडे परिगह सज्ञावाले, उनसे मैथुन-सज्ञा वाले सख्यात गुण। उनसे भय-सज्ञावाले सख्यात गुण और उनसे आहार-सज्ञावाले भी सख्यात गुण।

मनुष्य मे सबसे थोडे भय-संज्ञावाले, उनसे आहार-सज्ञा-वाले सख्यात गुण। उनसे परिग्रह-सज्ञावाले सख्यात गुण और उनसे भी मैथुन-सज्ञावाले सख्यात गुण।

देव मे आहार-सज्ञावाले सबसे थोड़े, उनसे भय-सज्ञावाले सख्यात गुण, उनसे मैथुन-सज्ञावाले सख्यात गुण और उनसे भी परिग्रह-संज्ञावाले संख्यात गुण।

आहार-संज्ञा के चार कारण है–कोठा–पेट खाली होना, २ क्षुधावेदनीय के उदय से, ३ आहार का चिन्तन करने से और ४ आहार सम्वन्धी बात सुनने से।

भयसज्ञा के चार कारण–१ धीरज के अभाव मे, २ भय-मोहनीय कर्म के उदय से, ३ भय की बात सुनने से और ४ भय का चिन्तन करने से भय-सज्ञा उत्पन्न होती है।

मैथुन-सज्ञा के चार कारण–१ रक्त मास वढने से, २ वेद-मोहनीय के उदय से, ३ मैथुन सम्वन्धी वाते सुनने से और ४ भोग सम्वन्धी चिन्तन करने से।

परिग्रह-सज्ञा के चार कारण–१अत्यंत इच्छा–मूर्च्छा होने से, २ लोभ-मोहनीय कर्म के उदय से, ३ परिग्रह सम्वन्धी वाते सुन कर और ४ परिग्रह सम्वन्धी चिन्तन करने से परिग्रह-सज्ञा उत्पन्न होती है।

नारकी मे आकर उत्पन्न होने वाले जीव में भय-सज्ञा वहुत होती है। तिर्यंचगति मे आये हुए जीव मे आहार-संज्ञा अधिक होती है। मनुष्य गति मे आये हुए मे मैथुन-संज्ञा वहुत होती है और देव गति मे आए हुए मे परिग्रह संज्ञा अधिक होती है।

नरक से आये हुए जीव मे क्रोध बहुत होता है। तिर्यंच से आये हुए मे माया अधिक होती है। मनुष्य से आये हुए मे मान अधिक होता है और देव गति से आये हुए जीव मे लोभ बहुत होता है।

आहार-सज्ञा, वेदनीय-कर्म के उदय से होती है। ओघ-सज्ञा, दर्शनावरणीय-कम के क्षयोपशम से होती है। लोक-सज्ञा, ज्ञानावरणीय-कर्म के क्षयोपशम से और शेष ७ सज्ञा-मोहनीय-कर्म के उदय से होती है।

नोट—स्मृति में रखने के लिए चार सज्ञाओ के प्रथमाक्षर सकेत रूप में लिए है, –आहारसज्ञा के लिए 'आ', भयसज्ञा के लिए 'भ', मैथुन-सज्ञा के लिए 'मा' और परिग्रहसज्ञा के लिए 'पी' अक्षर है। नारकी का सकेत 'मा आ पी' है। इसका भाव यह है कि नारकी में सबसे थोडी मैथुनसज्ञा, उससे आहारसज्ञा सख्यात गुण, उससे परिग्रहसज्ञा सख्यात गुण और उससे भी अधिक भयसज्ञा। सज्ञा चार है और अक्षर तीन है। इसका कारण जिस गति में जो सर्वाधिक सज्ञा है, वह बाद में स्वय समझ लेनी चाहिए। सक्षेपीकरण के कारण चौथा अक्षर छोड दिया गया है। गति की अपेक्षा अक्षर इस प्रकार है। नरक में–'मा आ पी।' तिर्यच में–पी, मा, भ। मनुष्य में–भ, आ, पी। देव में–आ, भ, मा।

(यह हमने बीकानेर से प्रकाशित "पन्नवणा सूत्र के थोकडों का प्रथम भाग" के आधार पर से लिखा है। सूत्र में ऐसा नहीं है।)

तीर्थंकर पद प्राप्ति के २० बोल

१ अरिहत भगवान् की भक्ति, उनके गुणो का चिन्तन और आज्ञा का पालन करते रहने से उत्कृष्ट रस जमे, तो तीर्थंकर नाम-कर्म का बन्ध होता है।

२ सिद्ध भगवान् की भक्ति और उनके गुणो का चिन्तन करने से।

३ निर्ग्रंथ-प्रवचन रूप श्रुतज्ञान मे अनन्य उपयोग रखने से।

४ गुरु महाराज की भक्ति, आहारादि द्वारा सेवा और उनके गुणो का प्रकाश करने एवं आशातना टालने से।

५ जाति-स्थविर (६० वर्ष की वय वाले) श्रुत-स्थविर (स्थानाग समवायाग के धारक) प्रव्रज्या-स्थविर (२० वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले) की भक्ति करने से।

६ बहुश्रुत (सूत्र, अर्थ और तदुभय युक्त) मुनिराज की भक्ति करने से।

७ तपस्वी मुनिराज की भक्ति करने से।

८ ज्ञान की निरन्तर आराधना करते रहने से।

९ सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करने से।

१० गुणज्ञ रत्नाधिको का तथा ज्ञानादि का विनय करने से।

११ भावपूर्वक उभय काल षडावश्यक (प्रतिक्रमण) करते रहने से।

१२ मूलगुण और उत्तरगुणो का निर्दोष रीति से शुद्धता पूर्वक पालन करने से।

१३ सदा सवेग भाव रखने से अर्थात् शुभ ध्यान करते रहने से।

१४ तपस्या करते रहने से।

१५ भक्तिपूर्वक सुपात्र दान देने से।

१६ आचार्यादि दस की वैयावृत्य करने से।

१७ सेवा तथा मिष्ट भाषणादि के द्वारा गुर्वादि को प्रसन्न रखने से और स्वय समाधिभाव मे रहने से ।

१८ नवीन ज्ञान का अभ्यास करते रहने से ।

१९ श्रुतज्ञान की भक्ति तथा बहुमान करने से ।

२० प्रवचन की प्रभावना करने (धर्म का प्रचार करने) से

उपरोक्त बीस बोलो की उत्कृष्टतापूर्वक आराधना करने से तीर्थंकर नाम-कर्म का बन्ध होता है। इस बन्ध के उदय वाले महापुरुष, तीर्थंकर बन कर मोक्ष-मार्ग का प्रवर्त्तन करते हैं और भव्य जीवो का कल्याण करते हैं ।

रूपी अरूपी

संसार मे रूपी और अरूपी वस्तुएँ कितने प्रकार की हैं, इसका वर्णन श्री भगवती सूत्र श १२ उ ५ मे इस प्रकार है।

१ चौफरसी रूपी के ३० भेद,--अठारह पाप, आठ कर्म, एक कार्मणशरीर, दो योग (मन, वचन) एक सूक्ष्म पुद्गलास्तिकाय का स्कध । ये तीस भेद चौफरसी रूपी के हैं। इनमे पाँच वर्ण, दो गध, पाँच रस, चार स्पर्श--शीत, उष्ण, रुक्ष (लूखा) और स्निग्ध (चोपडिया) पाये जाते हैं* ।

---

* यद्यपि पुद्गलो के दो तीन आदि स्पर्श भी पाये जाते है, तथापि वे पुद्गल चतुष्पर्शी जाती के माने गये है, इसी प्रकार चार (खुरदरा, भारी, शीत, रुक्ष) पाँच आदि स्पर्श वाले पुद्गल अष्टस्पर्शी जाती के माने गये है । इसलिये यहाँ पुद्गलो के चौस्पर्शी और अष्ट-स्पर्शी—ये दो भेद ही किये हैं ।

२ अठफरसी रूपी के १५ भेद--छ द्रव्य लेश्या, चार शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तेजस्) घनोदधि, घनवाय, तनुवाय, काययोग, वादर पुद्गलास्तिकाय का स्कन्ध (इसमे द्वीप, समुद्र, नरक पृथ्वियाँ, विमान और सिद्धशिलादि सम्मिलित है) ये १५ अठफरसी है। इनमे पाँच वर्ण, दो गध, पाँच रस और आठ स्पर्श पाये जाते है।

३ अरूपी के ६१ भेद–१८ अठारह पाप की विरति (त्याग) १२ उपयोग, ६ भाव लेश्या, ५ द्रव्य (पुद्गलास्तिकाय को छोड कर), ४ बुद्धि (उत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी), ४ भेद मतिज्ञान के (अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा), ३ दृष्टि, ५ शक्ति (उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम), ४ सज्ञा। ये ६१ बोल अरूपी के हैं। इनमे वर्ण, गध, रस और स्पर्श नही पाये जाते। इनमे अगुरु-लघु का एक भागा पाया जाता है।

जयतीबाई के प्रश्न

श्री भगवतीजी सूत्र के १२ वे शतक के दूसरे उद्देशे मे 'जयती बाई' के प्रश्न और भगवान् के उत्तर का वर्णन इस प्रकार है।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे कौशाम्बी नाम की नगरी थी। एक ममय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहा पधारे। यह समाचार सुन कर सभी नागरिक हर्षित हुए। राजा उदायन आदि भी वन्दनार्थ गये। जयंती श्रमणोपासिका, उदायन नरेश

की फूफी थी। वह अपनी भावज–राजमाता मृगावती देवी के साथ प्रभु को वन्दना करने के लिए गयी। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। धर्मकथा सुन कर परिषद् लौट गयी। राजा और रानी भी लौट गये। उस समय जयती श्रमणोपासिका ने भगवान् को वन्दना-नमस्कार कर के विनयपूर्वक पूछा,–

१ प्रश्न–अहो भगवन्! जीव के भारी होने का क्या कारण है, और किस प्रकार जीव हलका होता है?

उत्तर–हे जयती! अठारह प्रकार के पापो के आचरण से जीव भारी होता है और इन पापो से विरत होने–त्याग करने से–जीव हलका होता है।

२ प्रश्न–अहो भगवन्! किस कारण से जीव ससार वढाता है और किस आचरण से ससार घटाता है?

उत्तर–हे जयती! १८ पापो के आचरण से जीव संसार वढाता और १८ पापो से निवृत्त होकर जीव समार घटाता है।

३ प्रश्न–अहो भगवन्! किस कारण से जीव कर्मों की स्थिति वढाता है और किस आचरण से घटाता है?

उत्तर–हे जयती! १८ पापो का आचरण कर के जीव कर्म-स्थिति वढाता है और १८ पापो का त्याग कर के जीव कर्म-स्थिति घटाता है।

४ प्रश्न–अहो भगवन्! किस कारण से जीव ससार-सागर मे परिभ्रमण करता है और किम विधि मे जीव, समार-सागर को तिर कर पार हो जाता है?

उत्तर–हे जयती! १८ पापो के सेवन से जीव समार

सागर मे रुलता रहता है और १८ पापो का त्याग कर के जीव, ससार से तिर जाता है।

५ प्रश्न—अहो भगवन् ! जीवो का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, या परिणाम से ?

उत्तर—हे जयती ! जीवो का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, परिणाम से नही।

६ प्रश्न—अहो भगवन् ! क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेगे ?

उत्तर—हाँ जयंती ! सभी भवसिद्धिक जीव, मोक्ष प्राप्त करेगे।

७ प्रश्न—अहो भगवन् ! सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष मे चले जावेगे,तो लोक, भवसिद्धिक जीवो से रहित हो जाएगा ?

उत्तर—हे जयती ! 'णो इणट्ठे समट्ठे'—यह नही हो सकता, अर्थात् सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष मे जावेगे, तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवो से रहित नही होगा।

अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

हे जयंती ! यथा दृष्टान्त—जैसे आकाश की श्रेणी अनादि अनन्त है। उसमे से एक-एक परमाणु खड जितना प्रदेश, एक-एक समय मे निकाले। इस प्रकार निकालते-निकालते अनन्ती अवसर्पिणी उत्सर्पिणी पूरी हो जाय, तो भी यह आकाश श्रेणी खाली नही होती। इसी प्रकार भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावेगे, तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवो से खाली नही होगा।

८ प्रश्न—अहो भगवन् ! जीव सोते हुए अच्छे या जागते

हुए अच्छे ?

उत्तर–हे जयंती ! कोई जीव सोते हुए अच्छे होते हैं, और कोई जीव जागते हुए अच्छे होते ।

अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

हे जयती ! जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते है, अधर्म मे आनन्द मानते हैं, यावत् अधर्म से आजीविका करते हैं, वे जीव सोते हुए ही अच्छे हैं। सोते रहने पर वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दुख नही दे पाते, यावत् परितापना नही उपजाते, अपनी तथा दूसरो की आत्मा को अधर्म मे नही जोडते । इस कारण अधर्मी जीव, सोते हुए अच्छे है। और जो जीव धर्मी हैं, यावत् धर्म से आजीविका करते है, वे जागते हुए अच्छे हैं। जागते हुए वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को सुखकारी होते हैं, यावत् अपनी तथा दूसरो की आत्मा को धर्म मे जोडते हैं।

९–१० जिस प्रकार सोते-जागते के प्रश्नोत्तर कहे, उसी प्रकार वलवान् व निर्वल तथा उद्यमी और आलसी के विपय मे भी कहना चाहिए। इसमे विशेषता यह है कि जिसका उद्यम अच्छा होगा, वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी यावत् स्वधर्मी की वैयावच्च मे अपनी आत्मा को जोडेगा।

११ प्रश्न–अहो भगवन् ! श्रोतेन्द्रिय के वश मे हुआ जीव, कैसे कर्म वाधता है ?

उत्तर–हे जयती ! आयुष्य-कर्म को छोड कर वाकी सात कर्मो की प्रकृति यदि ढीली हो, तो गाढी–दृढ–करता है। थोडे

काल की स्थिति हो, तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्द रस वाली हो, तो तीव्र रस वाली करता है। आयुष्य बाधता है अथवा नही बाधता। असातावेदनीय कर्म बारम्बर बाधता है और चार गति रूप ससार मे परिभ्रमण करता रहता है।

१२ से १५ जिस प्रकार श्रोतेद्रिय के विषय मे कहा, उसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के विषय मे भी कहना चाहिये।

जयतीबाई श्रमणोपासिका अपने प्रश्नो का उत्तर सुन कर बहुत प्रसन्न हुई। उसे पूर्ण सन्तोष हुआ। वह देवानन्दा की तरह दीक्षा लेकर और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गयी।

पाँच देव

श्री भगवती सूत्र के १२ वे शतक के ६ वे उद्देश मे 'पाँच देवो' का वर्णन है। इसके दस द्वार इस प्रकार हैं।

१ नाम द्वार, २ अर्थ द्वार, ३ आगति द्वार, ४ गति द्वार, ५ स्थिति द्वार, ६ वैक्रिय द्वार, ७ संचिट्ठण-काल द्वार ८ अवगाहना द्वार, ९ अन्तर द्वार और १० अल्प-बहुत्व द्वार।

विवेचन

१ नाम द्वार—अहो भगवन्! देव कितने प्रकार के हैं? हे गौतम! देव पांच प्रकार के है। यथा—१ भव्य-द्रव्य-देव, २ नरदेव, ३ धर्मदेव, ४ देवाधिदेव और ५ भावदेव।

२ अर्थ द्वार—अहो भगवन्! भव्य-द्रव्य-देव किसे कहते हैं?

हे गौतम ! जो जीव, अभी मनुष्यगति अथवा तिर्यञ्चगति मे है, और भविष्य मे देवगति में उत्पन्न होने वाले हैं, उन्हे 'भव्य-द्रव्य-देव' कहते हैं।

अहो भगवन् ! नरदेव किसे कहते हैं ? हे गौतम ! जो राजा, चारो दिशाओ के स्वामी है, चक्रवर्ती हैं। जिनके पास ८४ लाख हाथी, ८४ लाख घोडे ८४ लाख रथ, ९६ करोड पैदल और ६४ हजार रानियाँ है। जो ९ निधि और १४ रत्नो के स्वामी हैं, ६ खण्ड के भोक्ता है, ३२ हजार मुकुट-वन्ध राजा जिनकी आज्ञा मे रहते हैं, उन्हे 'नरदेव' कहते हैं।

अहो भगवन् ! धर्मदेव किसे कहते है ? हे गौतम ! जो अनगार २७ गुणो को धारण करते हैं, उन्हे 'धर्मदेव' कहते हैं।

अहो भगवन् ! देवाधिदेव किसे कहते हैं ?—हे गौतम ! ३४ अतिशय, ३५ वाणी के गुणो से सहित, उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् को 'देवाधिदेव' कहते हैं।

अहो भगवन् ! भावदेव किसे कहते हैं ?—हे गौतम ! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक—ये चार जाति के देव—'भावदेव' कहलाते हैं।

३ आगति द्वार—भव्य-द्रव्य-देव की आगति—२८४ की। १७९ की लडी (अर्थात् १०१ सम्मूर्छिम मनुष्य, ४८ तिर्यंच, १५ कर्मभूमि के पर्याप्त, व १५ अपर्याप्त ये १७९ की लडी) ७ नारकी, सर्वार्थसिद्ध को छोड कर ९८ जाति के देव के पर्याप्त, ये सब २८४।

नरदेव की आगति–८२ की। पहली नारकी, १० भवन-पति, २६ वाणव्यतर, १० ज्योतिपी, १२ देवलोक, ९ लोका-तिक, ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर विमान के पर्याप्त।

धर्मदेव की आगति–२७५ की। १७१ की लडी (१७९ मे से तेऊकाय व वायुकाय के ८ कम करके) ९९ जाति के देव और ५ नारकी के पर्याप्त–ये २७५।

देवाधिदेव की आगति–३८ की। (१२ देवलोक, ९ लोका-तिक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान और ३ नारकी के पर्याप्त–ये ३८।

भावदेव की आगति–१११ की। १०१ सन्नी मनुष्य, ५ सन्नी तिर्यंच और ५ असन्नी तिर्यंच पंचेद्रिय। इन सभी के पर्याप्त।

४ **गति द्वार**–भव्य-द्रव्य-देव की गति–१९८। ९९ जाति के देवता के अपर्याप्त और पर्याप्त।

नरदेव की गति–१४ की। ७ नारकी के अपर्याप्त और पर्याप्त।

धर्मदेव की गति–७० की। १२ देवलोक, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान। इन ३५ के पर्याप्त और अपर्याप्त।

देवाधिदेव की गति–मोक्ष।

भावदेव की गति–४६ की। १५ कर्मभूमि, ५ सन्नी तिर्यंच, वादर, पृथ्वी, पानी और प्रत्येक वनस्पति। इन २३ के अपर्याप्त और पर्याप्त।

५ **स्थिति द्वार**–भव्य-द्रव्य-देव की स्थिति–जघन्य अन्त-र्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ३ पल्योपम की।

नरदेव की स्थिति–जघन्य ७०० वर्ष की, उत्कृष्ट ८४ लाख पूर्व की।

धर्मदेव की स्थिति–जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशऊणी १ करोड पूर्व।

देवाधिदेव की स्थिति–जघन्य ७२ वर्ष, उत्कृष्ट ८४ लाख पूर्व।

भावदेव की स्थिति–जघन्य १० हजार वर्ष, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

६ **वैक्रिय द्वार**–भव्य-द्रव्य-देव और धर्मदेव के लब्धि हो, तो वैक्रिय करे, जघन्य १–२–३ उत्कृष्ट सख्याता, असख्याता करने की शक्ति भी हो सकती है, किन्तु करते नही। नरदेव और भावदेव वैक्रिय करे, तो जघन्य १–२–३ उत्कृष्ट सख्याता, असख्याता करने की शक्ति है, किन्तु करते नही। देवाधिदेव मे तो अनन्त वैक्रिय करने की शक्ति है, किन्तु करते नही।

७ **सचिट्ठणा काल**–जिस प्रकार स्थिति कही, उसी प्रकार सचिट्ठणा काल कहना चाहिए, परन्तु विशेषता यह है कि धर्मदेव का सचिट्ठण काल जघन्य १ समय का है।

८ **अवगाहना द्वार**–भव्य-द्रव्य-देव की अवगाहना जघन्य अंगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट १ हजार योजन। नरदेव की अवगाहना जघन्य ७ धनुष, उत्कृष्ट ५०० धनुष। धर्मदेव की अवगाहना–जघन्य एक हाथ, उत्कृष्ट ५०० धनुष। देवाधिदेवकी अवगाहना जघन्य ७ हाथ, उत्कृष्ट ५०० धनुष। भावदेव की अवगाहना जघन्य एक हाथ, उत्कृष्ट ७ हाथ।

९ अन्तर द्वार—भव्य-द्रव्य-देव का अन्तर—जघन्य १० हजार वर्ष और अन्तर्मुहूर्त अधिक, उत्कृष्ट अनन्त काल। नरदेव का अन्तर—जघन्य १ सागर झाझेरा, उत्कृष्ट देशऊणा अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन। धर्मदेव का अन्तर जघन्य पल्योपम पृथक्त्व, उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गल परावर्त्तन। देवाधिदेव का अन्तर नही। भावदेव का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्त काल।

१० अल्पबहुत्व—सब से थोडे नरदेव। उनसे देवाधिदेव संख्यात गुण। उनसे धर्मदेव संख्यात गुण। उनसे भव्य-द्रव्य-देव असंख्यात गुण। उनसे भावदेव असंख्यात गुण हैं।

विरह द्वार

श्री पन्नवणा सूत्र के छठे पद मे 'विरह द्वार' का वर्णन इस प्रकार है।

अहो भगवन्! चारो ही गति मे उत्पन्न होने का विरह कितना है?

उत्तर—हे गौतम! चारो ही गति मे उत्पन्न होने का विरह हो तो जघन्य १ समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त। पहली नारकी, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, पहला दूसरा देवलोक और सम्मूर्छिम मनुष्य की उत्पत्ति का विरह जघन्य १ समय, उत्कृष्ट २४ मुहूर्त।

दूसरी नारकी से सातवी नारकी तक का विरह हो, तो जघन्य १ समय, उत्कृष्ट दूसरी नारकी का ७ दिन-रात का,

तीसरी नारकी का १५ रात्रि-दिन का। चौथी नारकी का १ महीने का। पाचवी नारकी दो महीनो का। छठी नारकी का ४ महीने का। सातवी नारकी का ६ महीने का।

तीसरे देवलोक से लगा कर सर्वार्थसिद्ध तक जघन्य १ समय, उत्कृष्ट—तीसरे देवलोक का ९ रात-दिन और २० मुहूर्त का। चौथे देवलोक का १२ रात-दिन और १० मुहूर्त। पाँचवे देवलोक मे २२॥ रात-दिन। छठे देवलोक का ४५ रात-दिन का। सातवे देवलोक का ८० रात-दिन का। आठवे देवलोक का १०० रात-दिन का। नौवे तथा दसवे देवलोक का सख्यात महीनो का, ग्यारहवे वारहवे देवलोक का सख्यात वर्षों का। नवग्रैवेयक की पहली त्रिक के देवो का सख्याता सैकडो वर्षों का। दूसरी त्रिक का संख्याता हजारो वर्षों का। तीसरी त्रिक का सख्याता लाखो वर्षो का। चार अनुत्तर विमान के देवो का पल के असख्यातवे भाग का। सर्वार्थसिद्ध के देवो का पल के सख्यातवे भाग का। सिद्ध भगवान् व ६४ इन्द्रो का जघन्य १ समय, उत्कृष्ट ६ महीनो का। चन्द्र, सूर्य के ग्रहण का विरह पडे, तो जघन्य ६ महीने का उत्कृष्ट चन्द्रमा का ४२ महीने का और सूर्य का ४८ वर्षो का। पांच स्थावर, अनुसमय अविरह, तीन विकलेंद्रिय और असन्नी तिर्यंच मे जघन्य १ समय, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्त। सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य मे जघन्य १ समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त। नवीन सम्यग्दृष्टि का विरह ७ दिन का। नवीन श्रावक का १२ दिन का और नवीन साधु का विरह १५ दिन का। भरत ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा तीर्थंकर चक्रवर्ती

वलदेव वासुदेव का जघन्य विरह ८४००० वर्ष का, साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका का जघन्य ६३००० वर्ष का उत्कृष्ट सव का देशोन अठारह कोडाकोड सागरोपम का।

छोटी गतागत

श्री पन्नवणा सूत्र के छठे पद मे छोटी गतागत का वर्णन इस प्रकार है।

अहो भगवन्! पहली नारकी के नेरिये कहाँ से आ कर उत्पन्न होते है और नरक से निकल कर कहाँ जाते हैं ?

उत्तर–हे गौतम! पहली नरक के नेरिये की आगति ११ की। यथा–पाँच सन्नी तिर्यच, ५ असन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय और १ सख्याता वर्षों का कर्मभूमिज मनुष्य। गति ६ पाच सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय और १ सख्याता वर्षों का कर्मभूमिज मनुष्य।

दूसरी नरक मे आगति ६ की–५ सन्नी तिर्यंच और १ सख्याता वर्षों का कर्मभूमिज मनुष्य। गति ६ की पूर्ववत्।

तीसरी नरक की आगति ५ की–जलचर, थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और सख्याता वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य। गति ६ की।

चौथी नरक की आगति ४ की–जलचर, थलचर, उरपरिसर्प और संख्याता वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य। गति ६ की।

पाँचवी नारकी की आगति ३ की–जलचर, उरपरिसर्प और सख्याता वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य। गति ६ की।

छठी नारकी की आगति २ की–जलचर और कर्मभूमिज संख्याता वर्ष के मनुष्य, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुसकवेदी।

गति ६ की।

सातवी नारकी की आगति २ की—जलचर और कर्मभूमिज सख्याता वर्ष के मनुष्य, पुरुषवेदी और नपुसकवेदी। गति ५—सन्नी तिर्यच की।

भवनपति और वाणव्यन्तर मे १६ की आगति—५ असन्नी तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय, ५ सन्नी तिर्यंच, सख्याता व असख्याता वर्षो के कर्मभूमिज मनुष्य, अकर्मभूमिज मनुष्य, अतरद्वीप के मनुष्य, थलचर व खेचर युगलिये। गति ९ की—५ सन्नी तिर्यंच, पृथ्वी, पानी, वनस्पति, सख्याता वर्षो की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्य।

ज्योतिषी मे और पहले व दूसरे देवलोक मे ९ की आगति—५ सन्नी तिर्यंच, सख्याता व असख्याता वर्षो की आयु वाले कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज मनुष्य और थलचर युगलिये। गति ९ की—भवनपति के अनुसार।

तीसरे देवलोक से लगा कर आठवे देवलोक तक के देवो की ६ की आगति और ६ की ही गति—५ सन्नी तिर्यच और सख्याता वर्षो की आयु के कर्मभूमिज मनुष्य।

नौवे देवलोक से लगा कर १२ वे देवलोक तक आगति ४ की—साधु, श्रावक, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। गति १—सख्याता वर्ष के कर्मभूमिज मनुष्य की।

नवग्रैवेयक मे आगति २ की—स्वलिंगी सम्यग्दृष्टि और स्वलिंगी मिथ्यादृष्टि। गति १ की।

पांच अनुत्तर विमान मे आगति २ की—१ ऋद्धि प्राप्त अप्रमादी अनगार और २ अऋद्धि प्राप्त अप्रमादी अनगार।

गति १ की ।

पृथ्वी, पानी ओर वनस्पति की आगति ७४ की–४६ की लडी (४६ तिर्यच के और ३ मनुष्य के–पर्याप्त, अपर्याप्त व सम्मूर्छिम) तथा २५ देवता (१० भवनपति, ८ वाणव्यन्तर, ५ ज्योतिषी और पहला-दूसरा देवलोक)। गति ४६ की लडी।

तेउकाय और वायुकाय की आगति ४६ की (लडी) और गति ४६ तिर्यच की।

तीन विकलेन्द्रिय की आगति और गति ४६ की लड़ी।

तिर्यंच पचेन्द्रिय की आगति ८७ की–४९ की लड़ी, ३१ देवता के (भवनपति से ८ वे देवलोक तक) और ७ नारकी। गति ९२ की–८७ ऊपर बताये अनुसार व असख्याता वर्ष के कर्मभूमिज मनुष्य, अकर्मभूमिज मनुष्य, अन्तरद्वीप के मनुष्य, थलचर और खेचर युगलिये।

मनुष्य की आगति ९६ की–४६ की लडी मे से ८ तेऊ-वायु के निकाल कर शेष ४१ और ४६ देव और ६ नारकी। गति १११ की–९६ ऊपर बताये अनुसार, ८ तेऊ-वायु के, सातवी नरक, असख्याता वर्षों के कर्मभूमिज मनुष्य, अकर्मभूमिज मनुष्य, अन्तरद्वीप के मनुष्य और थलचर, खेचर युगलिये तथा मोक्ष।

आत्मारम्भी परारम्भी

श्री भगवती सूत्र के पहले शतक के पहले उद्देशे मे आत्मारम्भी परारम्भी का वर्णन इस प्रकार है।

प्रश्न–अहो भगवन्! क्या जीव आत्मारभी है, * परारंभी

* आरम्भ का अर्थ है–ऐसा कार्य करना जिससे किसी जीव को कष्ट

है, तदुभयारम्भी है या अनारम्भी है ?

उत्तर—हे गौतम ! जीव के दो भेद हैं—१ ससार-समापन्नक (ससारी) और २ अससार-समापन्नक (सिद्ध)। सिद्ध भगवान् न तो आत्मारम्भी है, न परारम्भी है और न तदुभयारम्भी हैं, वे अनारम्भी हैं। ससारी जीव के दो भेद हैं—सयति और असयति। सयति के दो भेद है—प्रमादी और अप्रमादी। अप्रमादी सयति न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं और न तदुभयारम्भी हैं, किंतु अनारम्भी है। प्रमादी के दो भेद हैं—शुभयोगी और अशुभयोगी। शुभयोगी भी न तो आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं और न तदुभयारम्भी है, किंतु अनारम्भी है। अशुभयोगी आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी है और तदुभयारम्भी भी है, किंतु अनारभी नही हैं। अशुभयोगी के समान असयति और २३ दण्डक है। मनुष्य, समुच्चय जीव के समान है, किन्तु विशेषता यह है कि ससारी और सिद्ध ये दो भेद नहीं कहना चाहिए। सलेशी (लेश्या सहित) समुच्चय मनुष्य के

पहुँचता हो, या उसके प्राणो का घात होता हो अर्थात आश्रवद्वार में प्रवृत्ति करना 'आरम्भ' कहलाता है।

आत्मारम्भ के दो अर्थ है—आश्रव में आत्मा को प्रवृत्त करना और आत्मा द्वारा स्वय आरम्भ करना। जो ऐसा करता है, वह आत्मारम्भी कहलाता है। दूसरे को आश्रव में प्रवृत्त करना या दूसरे के द्वारा आरम्भ कराना 'परारम्भ' है। जो ऐसा करता है, वह 'परारम्भी' कहलाता है। आत्मारम्भ और परारम्भ दोनो करने वाला जीव 'उभयारम्भी' कहलाता है। जो जीव आत्मारम्भ, परारम्भ और उभयारम्भ से रहित होता है, वह 'अनारम्भी' कहलाता है।

समान है। कृष्ण नील और कापोत लेश्या वाले २२ दण्डक आत्मारम्भी हैं, परारम्भी है और तदुभयारम्भी है, अनारम्भी नही है। समुच्चय जीव, लेजोलेशी १८ दण्डक, पद्मलेशी, शुक्ललेशी तीन-तीन दण्डक, मनुष्य के समान हैं।

इहभविक पारभविक

श्री भगवती सूत्र के पहले शतक के पहले उद्देशे मे 'इह-भविक पार-भविक' का वर्णन इस प्रकार है।

१ प्रश्न—अहो भगवन्! ज्ञान, इहभविक (इस भव मे) है, पारभविक (पर भव मे) है, या तदुभय-भविक (दोनो भवो मे) है?

उत्तर—हे गौतम! ज्ञान इहभविक भी है, पारभविक भी है और तदुभय-भविक है?

२ प्रश्न—अहो भगवन्! दर्शन, इहभविक है, पारभविक है और तदुभय-भविक है?

उत्तर—हे गौतम! दर्शन, इहभविक भी है, पारभविक भी है और तदुभय-भविक भी है।

३ प्रश्न—अहो भगवन्! चारित्र, इहभविक है, पारभविक है या तदुभयभविक है?

उत्तर—हे गौतम! चारित्र इहभविक है, किन्तु पारभविक नही और तदुभयभविक भी नही है। इसी प्रकार तप और सयम भी इहभविक है, पारभविक और तदुभयभविक नही है।

संसार संचिट्ठण काल

श्री भगवती सूत्र के पहले शतक के दूसरे उद्देशे मे 'समार-सचिट्ठुण काल' का अधिकार इस प्रकार लिखा है।

चउ संचिट्ठणा होइ, कालो सुण्णासुण्ण मीसो।
तिरियाणं सुण्णवज्जो, सेसे तिण्णि अप्पाबहू ॥

१ प्रश्न--अहो भगवन् ! ससार-सचिट्ठुण काल* (ससार

---

* 'यह जीव अतीत काल में किस गति में रहा था' यह बतलाना 'ससार सचिट्ठुण काल' कहलाता है।

१ एक नारकी का नेरिया, नारकी से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ। वहाँ से फिर पीछा नारकी में उत्पन्न हुआ। वह जितने नेरियो को सातो नारकियो में छोड कर गया था, उनमें से एक भी वहाँ नहीं मिले अर्थात् नरको में से निकल कर सभी नारक, दूसरी गतियों में चले गये हो, उसे 'शून्य काल' कहते हैं।

२ एक नारकी का नेरिया, नरक से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ, फिर वहाँ से वापिस नरक में उत्पन्न हुआ। वह पहले जितने नेरियो को छोड कर गया था, उतने सभी वहाँ मिले अर्थात् वहाँ से एक भी मरा नहीं हो और एक भी नया आ कर उत्पन्न नहीं हुआ हो, उसे 'अशून्य काल' कहते हैं।

३ एक नारकी का नेरिया, नरक से निकल कर दूसरी गति में उत्पन्न हुआ। वहाँ से लौटकर फिर नरक में उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरियों को छोड कर गया था, उनमें से कुछ निकल कर दूसरी गति में चले गये हो, और कुछ नये उत्पन्न हो गये हों, यहां तक कि पहले नेरियो में से एक भी नेरिया वहाँ मिले, तो उसे 'मिश्र काल' कहते हैं।

सस्थान काल) कितने प्रकार का है ?

उत्तर–हे गौतम ! चार प्रकार का है–१ नारकी-ससार-सचिट्ठुण काल, २ तिर्यच-ससार-सचिट्ठुण काल, ३ मनुष्य-ससार-सचिट्ठुण काल और देव-ससार-सचिट्ठुण काल ।

२ प्रश्न–अहो भगवन् ! नारकी-ससार-सचिट्ठुण काल कितने प्रकार का है ?

उत्तर–हे गौतम ! तीन प्रकार का है–१ शून्य काल २ अशून्य काल और ३ मिश्र काल । इसी प्रकार मनुष्य और देव मे भी ससार-सचिट्ठुण काल तीन-तीन पाते है। तिर्यच मे ससार संचिट्ठुण काल दो पाते है–१ अशून्य काल और २ मिश्र काल ।

३ प्रश्न–अहो भगवन् ! नारकी मे कौन-सा काल थोडा है और कौन-सा काल बहुत है ?

उत्तर–हे गौतम ! सब से थोडा अशून्य काल, उससे मिश्र काल अनन्त गुण, उससे शून्य काल अनन्त गुण । इसी प्रकार मनुष्य और देव की अल्प-बहुत्व कहना चाहिए । तिर्यच मे सब से थोडा अशून्य काल, उससे मिश्र काल अनन्त गुण है ।

४ प्रश्न–अहो भगवन् ! चार प्रकार के संसार-सचिट्ठुण काल मे कौन-सा थोडा और कौन-सा बहुत है ?

उत्तर–सब से थोडा मनुष्य ससार-सचिट्ठुण काल है, उससे नारकी-ससार-सचिट्ठुण काल असख्यात गुण, उससे देव-ससार-सचिट्ठुण काल असख्यात गुण और उससे तिर्यंच-संसार-सचिट्ठुण काल अनन्त गुण है ।

असंयतादि भव्य-द्रव्य-देव

श्री भगवती सूत्र के पहले शतक के दूसरे उद्देशे मे 'असयत भव्य-द्रव्य-देव' विषयक वर्णन इस प्रकार है।

१ प्रश्न–अहो भगवन्! * असयत भव्य-द्रव्य-देव मर कर कहाँ उत्पन्न होता है?

उत्तर–हे गौतम! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट ऊपर के (नौवे) ग्रैवेयक मे उत्पन्न होता है।

२ प्रश्न–अहो भगवन्! अविराधक साधुजी मर कर कहाँ उत्पन्न होते है?

उत्तर–हे गौतम! जघन्य पहले देवलोक मे, उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध मे उत्पन्न होते हैं।

३ प्रश्न–अहो भगवन्! विराधक साधुजी मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं?

उत्तर–हे गौतम! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट पहले देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

४ प्रश्न–अहो भगवन्! अविराधक श्रावक मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं?

उत्तर–हे गौतम! जघन्य पहले देवलोक मे, उत्कृष्ट

---

* ऊपर से साधु की क्रिया करने वाले, किन्तु भाव से सम्यक् चारित्र के परिणामो से रहित मिथ्यादृष्टि जीव, 'असयत भव्य द्रव्य देव' कहे गये है, तथा देव का आयुष्य बांधे हुए अविरत मनुष्य और तिर्यंच भी 'असंयत भव्य द्रव्य देव' कहे गये है।

बारहवे देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

५ प्रश्न–अहो भगवन् ! विराधक श्रावक मर कर कहाँ उत्पन्न होते है ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट ज्योतिषी मे उत्पन्न होते है।

६ प्रश्न–अहो भगवन् ! असन्नी (विना मन वाले जीव अकाम-निर्जरा करने वाले) मर कर कहाँ उत्पन्न होते है ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट वाणव्यतर में उत्पन्न होते है।

७ प्रश्न–अहो भगवन् ! कन्द-मूल भक्षण करने वाले तापस मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट ज्योतिषी मे उत्पन्न होते हैं।

८ प्रश्न–अहो भगवन् ! कान्दर्पिक (हँसी-मजाक करने वाले) साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट पहले देवलोक मे उत्पन्न होते है।

९ प्रश्न–अहो भगवन् ! चरक-परिव्राजक और अम्बडजी के मत के सन्यासी मर कर कहाँ उत्पन्न होते है ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट पाँचवे देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

१० प्रश्न–किल्विषी भावना वाले तथा आचार्य-उपाध्याय

आदि के अवर्णवाद बोलने वाले साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट छठे देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

११ प्रश्न–अहो भगवन् ! सन्नी तिर्यच मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट आठवे देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

१२ प्रश्न–अहो भगवन् ! आजीवक (गोशालक) मत के मानने वाले साधु मर कर कहा उत्पन्न हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट बारहवे देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

१३ प्रश्न–अहो भगवन् ! आभियोगिक (मन्त्र-जन्त्रादि करने वाले) साधु मर कर कहाँ उत्पन्न होते है ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट बारहवे देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

१४ प्रश्न–अहो भगवन् ! सलिगी दर्शन-व्यापन्न (साधु के लिंग को धारण करने वाले समकित से भ्रष्ट, निन्हव आदि) मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर–हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट ऊपर के (नौवे) ग्रैवेयक मे उत्पन्न होते है।

सवणे णाणे

श्री भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पाँचवे उद्देशे मे 'सवणे णाणे' के प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं।

सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हये तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥

१ प्रश्न–अहो भगवन्! तथारूप के श्रमण-माहण की पर्युपासना करने वाले पुरुप को उसकी पर्युपासना (सेवा) का क्या फल मिलता है?

उत्तर–हे गौतम! 'श्रवण' फल मिलता है अर्थात् सम्यक् शास्त्रो का सुनना मिलता है।

२ प्रश्न–अहो भगवन्! श्रवण का क्या फल है?

उत्तर–हे गौतम! श्रवण का ज्ञान (जानपना) है।

३ प्रश्न–अहो भगवन् ज्ञान का क्या फल है?

ऊत्तर–हे गौतम! ज्ञान का फल 'विज्ञान' (विवेचन पूर्वक ज्ञान) है।

४ प्रश्न–अहो भगवन्! विज्ञान का क्या फल है?

उत्तर–हे गौतम! विज्ञान का फल 'पच्चक्खाण' है।

५ प्रश्न–अहो भगवन्! पच्चक्खाण का क्या फल है?

उत्तर–हे गौतम! पच्चक्खाण का फल 'सयम' है।

६ प्रश्न–अहो भगवन्! सयम का क्या फल है?

उत्तर–हे गौतम! सयम का फल 'अनाश्रव' (आश्रव रहित होना) है।

७ प्रश्न—अहो भगवन् ! अनाश्रव का क्या फल है ?

उत्तर—हे गौतम ! अनाश्रव का फल 'तप' है।

८ प्रश्न—अहो भगवन् ! तप का क्या फल है ?

उत्तर—हे गौतम ! तप का फल 'वोदाण' (कर्मों का नाश) है।

९ प्रश्न—अहो भगवन् ! वोदाण का क्या फल है ?

उत्तर—हे गौतम ! वोदाण का फल 'अक्रिया' (निष्क्रियता-क्रिया-रहित होना) है।

१० प्रश्न—अहो भगवन् ! अक्रिया का क्या फल है ?

उत्तर—हे गौतम ! अक्रिया का फल 'सिद्धि' है।

पंचास्तिकाय

श्री भगवती सूत्र के दूसरे शतक के दसवें उद्देशे में 'पचास्तिकाय' का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है।

अहो भगवन् ! अस्तिकाय के कितने भेद हैं ?

हे गौतम ! अस्तिकाय के ५ भेद हैं—१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ जीवास्तिकाय और ५ पुद्गलास्तिकाय।

१ प्रश्न—अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय में कितने वर्ण कितने गंध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! धर्मास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत और [illegible]

लोक-द्रव्य है। धर्मास्तिकाय के ५ भेद हैं—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव और ५ गुण। द्रव्य से—धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। क्षेत्र से—लोक प्रमाण है। काल से—आदि-अन्त रहित है। भाव से—अरूपी, वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही और स्पर्श नही। गुण से—चलन (गति) गुण वाला है। पानी मे मछली का दृष्टान्त।

२ प्रश्न—अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय मे कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते है ?

उत्तर—हे गौतम ! अधर्मास्तिकाय मे वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही और स्पर्श भी नही। अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित लोक-द्रव्य है। अधर्मास्तिकाय के ५ भेद हैं—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव और ५ गुण। द्रव्य से—अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। क्षेत्र से—लोक प्रमाण है। काल से—आदि-अन्त रहित है। भाव से--अरूपी है, वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही और स्पर्श भी नही। गुण से स्थिर गुण है। थके हुए पथिक को छाया का दृष्टान्त।

३ प्रश्न—अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय मे कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते है ?

उत्तर—हे गौतम ! वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही और स्पर्श नही। अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोकालोक द्रव्य। इसके ५ भेद हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण। द्रव्य से--एक द्रव्य। क्षेत्र से--लोकालोक प्रमाण। काल से आदि-अन्त रहित। भाव से अरूपी, वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही और

स्पर्श नही। गुण से अवगाहन गुण। भीत मे खूँटी और दूध मे पतासे का दृष्टात। आकाश मे विकाश का गुण।

४ प्रश्न–अहो भगवन्! जीवास्तिकाय मे कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते है?

उत्तर–हे गौतम! वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही और स्पर्श नही। अरूपी, जीव, शाश्वत, अवस्थित लोक द्रव्य। इसके ५ भेद हैं–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण। द्रव्य से अनन्त जीव-द्रव्य। क्षेत्र से लोक प्रमाण। काल से आदि-अन्त रहित। भाव से अरूपी, वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही, और स्पर्श नही। गुण से उपयोग गुण, चेतना लक्षण। चद्रमा की कला का दृष्टात।

५ प्रश्न–अहो भगवन्! पुद्गलास्तिकाय मे कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं?

उत्तर–हे गौतम! पुद्गलास्तिकाय मे पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श पाये जाते है। रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित लोक-द्रव्य। इसके ५ भेद हैं–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण। द्रव्य से--अनन्त पुद्गल द्रव्य। क्षेत्र से लोक प्रमाण काल से आदि-अन्त रहित। भाव से–रूपी, वर्ण है, गन्ध है, रस है और स्पर्श है। गुण से–पूरण, गलन, विध्वशन गुण–मिले, बिखरे, गले। बादलो का दृष्टात।

६ प्रश्न–अहो भगवन्! धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय कहना? दो प्रदेश, तीन प्रदेश यावत् दस प्रदेश, सख्यात प्रदेश और असख्यात तथा सभी प्रदेशो मे एक भी प्रदेश कम हो, तो धर्मास्तिकाय कहना?

उत्तर–नही, उसे धर्मास्तिकाय नही कहना।

अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

हे गौतम ! क्या खण्डित (टूटे हुए अपूर्ण) चक्र (पहिये) को चक्र कहना या पूरे चक्र को चक्र कहना ?

अहो भगवन् ! खडित चक्र को चक्र नही कहना, किन्तु पूरे चक्र को चक्र कहना। छत्र, चमर, वस्त्र, दण्ड, शस्त्र, मोदक (लड्डू) भी पूरे ही होते हैं, इसी प्रकार धर्मास्तिकाय के पूरे प्रदेश हो, तो धर्मास्तिकाय कहना।

७ जिस प्रकार धर्मास्तिकाय का कहा, उसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के विषय मे कहना।

८ आकाशास्तिकाय के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि आकाशास्तिकाय मे अनन्त प्रदेश होते हैं। उनमे से एक भी प्रदेश कम हो, तो आकाशास्तिकाय नही कहना।

९ जिस प्रकार आकाशास्तिकाय के विषय मे कहा, उसी प्रकार जीवास्तिकाय के विपय मे भी कहना चाहिए।

१० पुद्गलास्तिकाय के विपय मे भी इसी प्रकार कहना।

११ प्रश्न–अहो भगवन् ! जीव अपना जीवपना कैसे वतलाता है ?

उत्तर–हे गौतम ! जीव उत्थान, कर्म, वल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम सहित है। मतिज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुतज्ञान के अनन्त पर्याय, अवधिज्ञान के अनन्त पर्याय, मन पर्यायज्ञान के अनन्त पर्याय, केवलज्ञान के अनन्त पर्याय, मतिअज्ञान के

अनन्त पर्याय, श्रुतअज्ञान के अनन्तपर्याय, विभगज्ञान के अनन्त पर्याय, चक्षु-दर्शन के अनन्त पर्याय, अचक्षु-दर्शन के अनन्त पर्याय, अवधि-दर्शन के अनन्त पर्याय और केवल-दर्शन के अनत पर्याय हैं। उनके उपयोग को धारण करता है और उपयोग लक्षण वाला हैं। इन कारणो से उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम द्वारा जीव, अपना जीवपना बतलाता है।

१२ प्रश्न–अहो भगवन्! आकाशास्तिकाय के कितने भेद हैं ?

उत्तर–हे गौतम! दो भेद है–लोकाकाश और अलोकाकाश।

अहो भगवन्! लोकाकाश मे जीव हैं, जीव के देश हैं, जीव के प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीव के देश हैं और अजीव के प्रदेश हैं ?

हे गौतम! जीव हैं, जीव के देश हैं और जीव के प्रदेश भी हैं। अजीव है,अजीव के देश हैं और अजीव के प्रदेश भी हैं।

अहो भगवन्! लोकाकाश मे जीव हैं, तो क्या एकेद्रिय हैं, बेइद्रिय हैं, तेइद्रिय है, चौरिन्द्रिय हैं, पचेद्रिय हैं और अनि-द्रिय हैं ?

हे गौतम! नियमा एकेद्रिय भी है, बेइद्रिय भी है, तेइ-द्रिय भी है, चौरिन्द्रिय भी है, पचेद्रिय भी हैं और अनिद्रिय भी हैं। इन छहो के देश भी हैं और प्रदेश भी हैं।

अहो भगवन्! लोकाकाश मे अजीव है, तो क्या रूपी है या अरूपी है ?

हे गौतम! रूपी भी है और अरूपी भी है। रूपी के चार

भेद–स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु-पुद्गल । अरूपी के ५ भेद–धर्मास्तिकाय का स्कन्ध है, देश नही, प्रदेश है। अधर्मास्तिकाय का स्कन्ध है, देश नही, प्रदेश है। अद्धासमय (काल) है।

अहो भगवन् ! अलोकाकाश मे जीव है, जीव के देश है, जीव के प्रदेश है, अजीव है, अजीव के देश है और अजीव के प्रदेश है ?

हे गौतम ! जीव नही, जीव के देश नही, जीव के प्रदेश नही। अजीव नही, अजीव के देश नही और अजीव के प्रदेश भी नही है। एक अजीव द्रव्य का देश है। वह अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणो से संयुक्त है। सर्व आकाश से अनतवॉ भाग कम है।

अहो भगवन् ! तिच्छीलोक ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ?

हे गौतम ! असख्यातवे भाग को स्पर्शा है ।

अहो भगवन् ! ७ पृथ्वी, ७ घनोदधि, ७ घनवाय और ७ तनुवाय ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ?

हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असख्यातवे भाग को स्पर्शा है।

अहो भगवन् ! सात नारकी के सात आकाशान्तरो ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ?

हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के सख्यातवे भाग को स्पर्शा है।

अहो भगवन् ! जम्बूद्वीप आदि असख्यात द्वीप और लवण-समुद्र आदि असख्यात समुद्रो ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ?

हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असख्यातवे भाग को स्पर्शा है ?

अहो भगवन् ! १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान और सिद्धशिला ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ?

हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असख्यातवे भाग को स्पर्शा है।

जिस प्रकार धर्मास्तिकाय से ६७× बोल कहे, उसी प्रकार अधर्मास्तिकाय से ६७ बोल और लोकाकाश से ६७ बोल कहना चाहिए। ये ६७+६७+६७ = २०१ और १७ समुच्चय के सभी मिल कर २१८ बोल हुए।

× १ अधोलोक, २ ऊर्ध्वलोक, ३ तिरछालोक, ये ३ लोक के ३ बोल। ७ पृथ्वी, ७ घनोदधि, ७ घनवाय, ७ तनुवाय, ७ नारकी के आकाश आतरे, १ द्वीप का, १ समुद्र का १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान और १ सिद्धशिला, ये सभी मिल कर ६७ बोल हुए।

वर्द्धमान हायमान अवस्थित

श्री भगवती सूत्र के पाँचवे शतक के आठवे उद्देशे मे 'वर्द्धमान, हायमान और अवस्थित' का स्वरूप इस प्रकार है।

जिस जगह जीव आते-जाते हुए वढते रहते है, उसे 'वर्द्धमान' कहते है। जिस जगह जीव आते-जाते हुए घटते है, उसे 'हायमान' कहते हैं। जिस जगह जीव आते नही, जाते नही अथवा समान रूप से आते और समान रूप से जाते है, उसे 'अवस्थित' कहते हैं। इस प्रकरण मे वर्द्धमान, हायमान और अवस्थित–ये तीन भंग कहे जावेगे।

समुच्चय जीव मे एक–अवस्थित भग होता है। २४ दण्डक मे तीनो भंग होते है। सिद्ध भगवान् मे दो भग पाये जाते है–पहला और तीसरा–वर्द्धमान ओर अवस्थित।

समुच्चय जीव मे एक भग है–अवस्थित। जितने जीव है, सदाकाल उतने ही रहते हैं, घटते-बढते नही। पाँच स्थावर छोड कर १९ दण्डक में भागा पावे ३, जिनमे हायमान, वर्द्धमान की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट आवलिका के असख्यातवे भाग की है। अवस्थित की स्थिति जघन्य एक समय की* उत्कृष्ट अपने-अपने विरह काल से दुगुनी है। पाँच

* अवस्थित की उत्कृष्ट स्थिति–समुच्चय नरक में २४ मुहूर्त्त की, पहली नरक की ४८ मुहूर्त्त की, दूसरी नरक की १४ दिन-रात की। तीसरी नरक की १ मास की। चौथी नरक की २ मास की। पाचवीं नरक की ४ मास की। छठी नरक की ८ मास की। सातवीं नरक की १२ मास की। समुच्चय देवता, तिर्यंच और मनुष्य की २४–२४ मुहूर्त्त।

स्थावर मे भागा पावे तीन। जिनमे तीनो ही भागो की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट आवलिका के असख्यातवे भाग की है। सिद्ध भगवान् मे भागा पावे दो–जिसमे वर्द्धमान की स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट ८ समय की तथा अवस्थित की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट छ महीनो की है।

सोपचय सापचय

श्री भगवतीसूत्र के पाँचवे शतक के आठवे उद्देशे मे 'सोपचय सापचय' का अधिकार इस प्रकार है।

की। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, पहले व दूसरे देवलोक की और सम्मूर्च्छिम मनुष्य की ४८ मुहूर्त्त की। तीन विकलेन्द्रिय की और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की २ अन्तर्मुहूर्त्त की। सन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय और सन्नी मनुष्य की २४ मुहूर्त्त की। तीसरे देवलोक की १८ दिन-रात ४० मुहूर्त्त की। चौथे देवलोक की २४ दिन-रात २० मुहूर्त्त की। पाँचवें देवलोक की ४५ दिन-रात की। छठे देवलोक की ९० दिन रात की। सातवे देवलोक की १६० दिन-रात की। आठवे देवलोक की २०० दिन रात की। नववें-दसवें देवलोक की सख्याता मास की। ग्यारहवे बारहवें देवलोक की सख्याता वर्षों की। नव ग्रैवेयक के नीचे की त्रिक की सख्याता सैकडों वर्षों की। मध्य त्रिक की सख्याता हजारो वर्षों की। ऊपर की त्रिक की सख्याता लाखों वर्षो की। चार अनुत्तर विमान की पल के असख्यातवें भाग की और सर्वार्थसिद्ध की पल के सख्यातवे भाग की है।

१ अहो भगवन् ! जीव* सोपचय हैं (केवल उत्पन्न होते है, मरते नही) ? सापचय है (केवल मरते ही है, उपजते नही) ? सोपचय-सापचय हैं (उपजते भी हैं, मरते भी हैं और समान भी रहते है) ? या निरुपचय-निरपचय है (उपजते भी नही और चवते भी नही, अवस्थित रहते हैं)?

हे गौतम ! जीव सोपचय नही, सापचय नही और सोपचय-सापचय भी नही, किन्तु निरुपचय-निरपचय हैं ।

नारकी आदि १९ दण्डक मे भागा पावे चार। ५ स्थावर मे भागा पावे एक (सोपचय-सापचय)। सिद्ध भगवान् मे भागा पावे दो--पहला और चौथा ।

२ स्थिति की अपेक्षा समुच्चय जीव और ५ स्थावर की स्थिति सर्व काल। १९ दण्डक मे भागा पावे चार। प्रथम तीन भागो की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट आवलिका के

---

* १ सोपचय--वृद्धि सहित अर्थात् पहले जितने जीव है, उतने तो बने रहे और नवीन जीवो की उत्पत्ति से सख्या बढ जाय ।

२ सापचय--हानि सहित अर्थात् पहले जितने जीव है, उनमें से कितने ही जीवो की मृत्यु हो जाने से सख्या घट जाय ।

३ सोपचय सापचय--वृद्धि और हानि सहित अर्थात् जीचो के जन्मने से और मरने से सख्या घट जाय, बढ जाय, या बराबर (अवस्थित) रहे ।

४ निरुपचय निरपचय--वृद्धि और हानि रहित अर्थात् जीवो की सख्या न तो बढे न घटे, किन्तु अवस्थित रहे ।

असंख्यातवे भाग की है। चौथे भागे की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अपने-अपने विरह काल जितनी है। सिद्ध भगवान् मे भागा पावे दो—पहला और चौथा। पहले भागे की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट ८ समय की है। चौथे भागे की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट ६ मास की है।

३ वर्द्धमान मे भागा पावे दो—पहला और तीसरा (सोपचय और सोपचय-सापचय)। हायमान मे भागा पावे दो—दूसरा और तीसरा (सापचय और सोपचय-सापचय)। अवस्थित मे भागा पावे दो—तीसरा और चौथा (सोपचय-सापचय और निरुपचय-निरपचय)।

४ सोपचय मे एक वर्द्धमान भग पाया जाता है। सापचय मे एक हायमान भग है। सोपचय-सापचय मे भागा पावे तीन—वर्द्धमान, हायमान और अवस्थित। निरुपचय-निरपचय मे अवस्थित।

पचास बोलों की बन्धी

श्री भगवती सूत्र के छठे शतक के तीसरे उद्दशे मे ५० बोलो की वन्धी का वर्णन इस प्रकार है।

वेय-संजय-दिट्ठि, सण्णी भवि दंसण-पज्जत्ते ।
भासग-परित्त-णाण, जोगु-वओग आहार सुहुम चरमेसु ॥

इसके पन्द्रह द्वार इस प्रकार है।

१ वेद द्वार, २ संयत, ३ दृष्टि, ४ सज्ञी, ५ भव्य, ६ दर्शन

७ पर्याप्त, ८ भाषक, ९ परित्त, १० ज्ञान, ११ योग, १२ उपयोग, १३ आहारक, १४ सूक्ष्म और १५ चरम द्वार।

१ वेद द्वार के ४ भेद—स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुसकवेदी और अवेदी।

२ सयत द्वार के ४ भेद—सयत, असयत, संयतासंयत और नो-संयत नो असयत नो सयतासंयत (सिद्ध)।

३ दृष्टि द्वार के ३ भेद—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि)।

४ सज्ञी (सन्नी) द्वार के तीन भेद—संज्ञी, असज्ञी और नो-संज्ञी नो-असज्ञी।

५ भव्य द्वार के ३ भेद—भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नो-भवसिद्धिक नो-अभवसिद्धिक (सिद्ध)।

६ दर्शन द्वार के ४ भेद—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अवधि-दर्शन और केवलदर्शन।

७ पर्याप्त द्वार के ३ भेद—पर्याप्त, अपर्याप्ति और नो-पर्याप्त नो-अपर्याप्त (सिद्ध)।

८ भाषक द्वार के २ भेद—भाषक और अभाषक।

९ परित्त द्वार के ३ भेद—परित्त, अपरित्त और नो-परित्त नो-अपरित्त (सिद्ध)।

१० ज्ञान द्वार के ८ भेद—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभग-ज्ञान।

११ योग द्वार के ४ भेद—मन योगी, वचन योगी, काय

योगी और अयोगी।

१२ उपयोग द्वार के २ भेद--साकारोपयोग--ज्ञान और अनाकारोपयोग--दर्शन।

१३ आहारक द्वार के दो भेद—आहारक और अनाहारक।

१४ सूक्ष्म द्वार के ३ भेद--सूक्ष्म, बादर और नो-सूक्ष्म नो-बादर (सिद्ध)।

१५ चरम द्वार के २ भेद--चरम और अचरम।

ये कुल ५० बोल हुए।

इनमें से जिन-जिन जीवो मे जितने बोल पाये जाते हैं, वे समुच्चय (घडा) रूप से कहे जाते हैं।

पहली नारकी मे बोल पावे ३४। शेष ६ नारकी मे बोल पावे ३३-३३।

भवनपति और वाणव्यन्तर देवो मे बोल पावे ३५।

ज्योतिषी देवो मे तथा पहले-दूसरे देवलोक में बोल पावे ३४।

तीसरे देवलोक से नव ग्रैवेयक तक बोल पावे ३३।

पाच अनुत्तर विमानो में बोल पावे २५।

पाच स्थावर में बोल पावे २३।

वेइद्रिय, तेइद्रिय में बोल पावे २७।

चौइद्रिय में और असन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे बोल पावे २८।

सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे बोल पावे ३६।

असन्नी मनुष्य में बोल पावे २२।

सन्नी मनुष्य मे बोल पावे ४३।

सिद्ध भगवान् मे वोल पावे १६ ।

समुच्चय जीव मे वोल पावे ५० ।

५० वोलो मे से किस वोल मे, कितने कर्मो का वन्ध होता है, वह प्रकार है, –

१ वेद द्वार--तीन वेदो मे ७ कर्मों की नियमा और आयु-कर्म की भजना । अवेदी मे ७ कर्मो की भजना और आयुकर्म का अबन्ध ।

२ संयत द्वार--सयत मे ८ कर्मो की भजना । असयत और सयतासंयत में ७ कर्मो की नियमा, आयुकर्म की भजना । नो-सयत नो-असंयत नो सयतासयत मे ८ कर्मों का अबन्ध ।

३ दृष्टि द्वार--सम्यग्दृष्टि मे ८ कर्मो की भजना । मिथ्या-दृष्टि मे ७ कर्मो की नियमा, आयुकर्म की भजना । मिश्रदृष्टि मे ७ कर्मों की नियमा और आयुकर्म का अबध ।

४ सज्ञी (सन्नी) द्वार--सज्ञी मे ७ कर्मों की भजना, वेद-नीय की नियमा । असज्ञी मे ७ कर्मो की नियमा, आयुकर्म की भजना । नो-संज्ञी नो-असज्ञी मे वेदनीय की भजना, ७ कर्मों का अबंध ।

५ भव्य द्वार--भव्य मे ८ कर्मों की भजना । अभव्य मे ७ कर्मों की नियमा, आयुकर्म की भजना । नोभव्य नोअभव्य मे ८ कर्मों का अबध ।

६ दर्शन द्वार--तीन दर्शन (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि-दर्शन) मे ७ कर्मों की भजना, वेदनीय की नियमा । केवल दर्शन से वेदनीय की भजना, ७ कर्मो का अबंध ।

७ पर्याप्त द्वार--पर्याप्त मे ८ कर्मों की भजना। अपर्याप्त मे ७ कर्मों की नियमा, आयुकर्म की भजना। नोपर्याप्त नो-अपर्याप्त मे आठ कर्मों का अबंध।

८ भाषक द्वार--भाषक मे ७ कर्मों की भजना, वेदनीय की नियमा। अभाषक मे ८ कर्मों की भजना।

९ परित्त द्वार--परित्त मे ८ कर्मो की भजना। अपरित्त मे ७ कर्मों की नियमा, आयुकर्म की भजना। नो परित्त नो अपरित्त मे ८ कर्मों का अबध।

१० ज्ञान द्वार--चार ज्ञान मे ७ कर्मों की भजना, वेदनीय की नियमा। केवलज्ञान में वेदनीय की भजना, ७ कर्मों का अबध। तीन अज्ञान मे ७ कर्मों की नियमा, आयुकर्म की भजना।

११ योग द्वार--तीन योग मे ७ कर्मों की भजना, वेदनीय की नियमा। अयोगी मे ८ कर्मों का अबध।

१२ उपयोग द्वार--साकारोपयोग और अनाकारोपयोग मे ८ कर्मों की भजना।

१३ आहारक द्वार--आहारक मे ७ कर्मों की भजना, वेदनीय की नियमा। अनाहारक मे ७ कर्मों की भजना, आयुकर्म का अबध।

१४ सूक्ष्म द्वार--सूक्ष्म मे ७ कर्मों की नियमा, आयुकर्म की भजना। बादर मे ८ कर्मों की भजना। नोसूक्ष्म नोबादर (सिद्ध) मे ८ कर्मों का अबध।

१५ चरम द्वार--चरम और अचरम मे ८ कर्मों की भजना।

सुपच्चक्खाण दुपच्चक्खाण

श्री भगवती सूत्र के सातवे शतक के दूसरे उद्देशे मे 'सुपच्चक्खाण-दुपच्चक्खाण' का स्वरूप इस प्रकार बताया है।

१ अहो भगवन् ! कोई कहता है कि मुझे सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव और सर्व सत्त्व को मारने का पच्चक्खाण है, तो उसके पच्चक्खाण को 'सुपच्चक्खाण' कहना चाहिए, या 'दुपच्चक्खाण' ?

हे गौतम ! + उसके पच्चक्खाण को कदाचित् 'सुपच्चक्खाण' और कदाचित् 'दुपच्चक्खाण' कहना चाहिए।

अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

हे गौतम ! जिसको ऐसा ज्ञान नही है कि ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, फिर भी वह कहता है कि 'मुझे सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव और सर्व सत्त्व को हनने का त्याग है,' तो १ वह मृषावादी है, सत्यवादी नही, २ तीन करण तीन जोग से असयत है, ३ अविरत है, ४ पाप कर्म का प्रत्याख्यानी नही है, ५ वह सक्रिय (आश्रव सहित) है, ६ असव्रत (संवर रहित) है, ७ छह काया का दण्डी (दण्ड देने वाला–हिंसा करने वाला) है, ८ एकान्त बाल है। उसके पच्चक्खाण, दुपच्चक्खाण है, सुपच्चक्खाण नही।

जिसको ऐसा ज्ञान है कि 'ये जीव हैं, ये अजीव है, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, इस प्रकार जानता हुआ वह कहता है कि

+ ये दोनो प्रकार के पच्चक्खाण साधु के लिये कहे है।

मुझे सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव और सर्व सत्त्व को मारने का त्याग है, तो १ वह सत्यवादी है, मृषावादी नही, २ तीन करण तीन योग से सयत है, ३ विरत है, ४ पापकर्म का पच्चक्खाण किया है, ५ अक्रिय (आश्रव रहित) है, ६ सवृत (संवर सहित) है, ७ छह काया का रक्षक है, ८ एकान्त पण्डित–ज्ञानी है। उसके पच्चक्खाण, सुपच्चक्खाण है, दुपच्चक्खाण नही।

२ अहो भगवन् ! पच्चक्खाण कितने प्रकार के हैं ?

हे गौतम ! पच्चक्खाण दो प्रकार के हैं–१मूलगुण पच्चक्खाण और २ उत्तरगुण पच्चक्खाण।

मूलगुण पच्चक्खाण के दो भेद है–१ सर्व मूलगुण पच्चक्खाण और २ देश मूलगुण पच्चक्खाण।

सर्व मूलगुण पच्चक्खाण के ५ भेद हैं–सर्वथा प्रकार से हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का त्याग करना अर्थात् पाँचो महाव्रतो का पालन करना।

देश मूलगुण पच्चक्खाण के ५ भेद हैं–स्थूल प्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का त्याग करना अर्थात् पाच अणुव्रतो का पालन करना।

उत्तरगुण पच्चक्खाण के दो भेद है–१ सर्व उत्तरगुण पच्चक्खाण, २ देश उत्तरगुण पच्चक्खाण। सर्व उत्तरगुण पच्चक्खाण के १० भेद हैं। यथा–

गाथा–अणागयं मइक्कतं, कोडीसहियं नियंटिय चेव।
सागारमणागारं, परिमाणकडं निरवसेसं॥
सकेयं चेव अद्धाए, पच्चक्खाणं भवे दसहा॥

१ अणागय–जो तप आगामी काल मे करना है, वह पहले कर ले ।

२ अइक्कत–जो तप पहले करना था, वह किसी कारण से नही हो सका, तो पीछे करे ।

३ कोडी सहिय–पूर्व तप की समाप्ति और उत्तर तप का प्रारभ, ये दोनो कोडिया जिस तप मे मिलती है । अर्थात् पूर्व तप का पारणा हो और दूसरे दिन से नये तप का प्रारंभ होता हो । उसे कोटि-सहित तप कहते हैं । जैसे–रत्नावली कनकावली आदि ।

४ नियटिय–नियमित दिन मे विघ्न आने पर भी धारा हुआ तप अवश्य करे ।

५ सागार–आगार सहित तप करे ।

६ अणागार–आगार रहित तप करे ।

७ परिमाणकडं–× दत्ति (दात) कवल, घर, चीज आदि का परिमाण करे ।

८ निरवसेस–चारो प्रकार के आहार का त्याग करे, सथारा करे ।

९ सकेयं–मुष्टि आदि संकेतपूर्वक तप करे ।

१० अद्धा *–काल का परिमाण कर तप करे ।

× एक साथ एक बार पात्र में पडे हुए अन्नादि को १ 'दात' कहते है ।

* अद्धा तप के १० भेद है–१ नवकारसी, २ पोरिसी, ३ दो पोरिसी ४ एकासन, ५ एकलठाण, ६ आयम्बिल, ७ नीवि, ८ उपवास, ९ अभिग्रह और १० दिवस-चरिम ।

देश उत्तरगुण पच्चक्खाण के भेद है–तीन गुणव्रत (दिशा-परिमाणव्रत, उपभोगपरिभोग परिमाण व्रत, अनर्थदण्ड विरमण-व्रत) । चार शिक्षाव्रत–(सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास और अतिथि-सविभाग व्रत) और सलेखना * ।

३ अहो भगवन् ! जीव, मूलगुण पच्चक्खाणी है उत्तर-गुण पच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है ?

हे गौतम ! समुच्चय जीव मे तीनो ही भग पाये जाते हैं । मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय मे तीनो भग पाये जाते है । शेष २२ दण्डक अपच्चक्खाणी है ।

अल्पबहुत्व–समुच्चय जीव मे सबसे थोडे मूलगुण पच्च-क्खाणी, उससे उत्तरगुण पच्चक्खाणी असख्यात गुण, उससे अपच्चक्खाणी अनन्त गुण ।

तिर्यंच पचेन्द्रिय मे सब से थोडे मूलगुण पच्चक्खाणी,

---

* सलेखना का पूरा नाम है–'अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना जोषणा आराधना ।' सब से पीछे मरण के समय में शरीर और कषायों को कृश करने के लिये जो तप विशेष स्वीकार कर आराधन किया जाय, उसे 'अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना जोषणा आराधना' करते है ।

देश उत्तरगुण पच्चक्खाण में दिशाव्रत आदि ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत, इन सात व्रतों की गिनती की गई है, किन्तु सलेखना की गिनती नहीं की गई । इसका कारण यह है कि दिशाव्रत आदि सात गुण, अवश्य देशोत्तर गुण रूप हं, परन्तु सलेखना का नियम नहीं है, क्योंकि देशोत्तर गुण वाले को यह देशोत्तर गुण रूप है और सर्वोत्तर गुण वाले के लिए यह सर्वोत्तर गुण रूप है । देशोत्तर गुण वाले को भी अन्त में यह सलेखना करने योग्य है । यह बात बतलाने के लिए यहाँ पर सलेखना आठवीं कही गई है ।

उससे उत्तरगुण पच्चक्खाणी असख्यात गुण, उससे अपच्च-क्खाणी असख्य गुण ।

मनुष्य मे सव से थोडे मूलगुण पच्चक्खाणी, उससे उत्तर-गुण पच्च्रक्खाणी संख्यात गुण, उससे अपच्चक्खाणी असख्यात गुण ।

४ अहो भगवन् ! जीव, सर्व मूलगुण पच्चक्खाणी है, देश मूलगुण पच्चक्खाणी है, अपच्चक्खाणी है ?

हे गौतम ! समुच्चय जीव और मनुष्य मे तीनो भेद हैं। नारकी से लगा कर वैमानिक तक (मनुष्य और तिर्यंच पचेद्रिय वर्जकर) २२ दण्डक मे एक–अपच्चक्खाणी भग ही पाया जाता है। तिर्यंच पचेन्द्रिय मे १ देश मूलगुण पच्चक्खाणी और २ अपच्चक्खाणी, ये दो भग है। मनुष्य मे तीनो भंग है।

अल्पबहुत्व–समुच्चय जीव मे सबसे थोडे सर्व मूलगुण पच्चक्खाणी, उससे देश मूलगुण पच्चक्खाणी असख्यात गुण, उससे अपच्चक्खाणी अनन्त गुण ।

तिर्यच पचेन्द्रिय मे सव से थोडे देश मूलगुण पच्चक्खाणी, उससे अपच्चक्खाणी असख्यात गुण ।

मनुष्य मे सबसे थोडे सर्व मूलगुण पच्चक्खाणी, उससे देश-मूलगुण पच्चक्खाणी सख्यात गुण, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यात गुण ।

५ अहो भगवन् ! जीव, सर्व उत्तरगुण पच्चक्खाणी है, देश उत्तरगुण पच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है ?

हे गौतम ! समुच्चय जीव मे तीनो भेद है। मनुष्य और

तिर्यंच पचेद्रिय मे भी तीन-तीन भेद हैं। शेष २२ दण्डक मे केवल अपच्चक्खाणी का एक भेद ही है।

अल्प-बहुत्व—समुच्चय जीव मे सबसे थोडे सर्व-उत्तरगुण पच्चक्खाणी, उससे देश-उत्तरगुण पच्चक्खाणी असख्य गुण, उससे अपच्चक्खाणी अनन्त गुण। तिर्यंच पचेद्रिय मे सब से थोडे सर्व-उत्तरगुण पच्चक्खाणी, उससे देश-उत्तरगुण पच्चक्खाणी असंख्यात गुण, उससे अपच्चक्खाणी असंख्यात गुण। मनुष्य मे सब से थोडे सर्व-उत्तरगुण पच्चक्खाणी, उससे देश-उत्तरगुण पच्चक्खाणी सख्यात गुण, उससे अपच्चक्खाणी असख्यात गुण।

६ अहो भगवन्! जीव सयत है, असयत है या संयता-सयत है ?

हे गौतम! समुच्चय जीव मे तीनो भेद हैं और मनुष्य मे भी तीनो भेद हैं। तिर्यंच पचेन्द्रिय मे दो भेद हैं—असंयत और सयतासंयत। शेष २२ दण्डक केवल असयत ही है।

अल्प-बहुत्व—समुच्चय जीव मे सब से थोड़े सयत, उससे सयतासयत असख्यात गुण, उससे असयत अनन्त गुण। तिर्यंच पचेन्द्रिय मे सब से थोडे सयतासयत, उससे असयत असख्यात गुण। मनुष्य मे सबसे थोडे सयत, उससे सयतासयत सख्यात गुण, उससे असंयत असख्यात गुण।

७ अहो भगवन्! जीव पच्चक्खाणी है, पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है ?

हे गौतम! समुच्चय जीव, तीनो प्रकार के हैं। मनुष्य मे भी तीनो भेद हैं। तिर्यंच पचेद्रिय मे वाद के दो भेद है। शेष

२२ दण्डक मे एक अपच्चक्खाणी ही हैं।

अल्प-वहुत्व—समुच्चय जीव मे सव से थोडे पच्चक्खाणी, उससे पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असख्यात गुण, उससे अपच्च-क्खाणी अनन्त गुण।

तिर्यच पंचेद्रिय मे सवसे थोड़े पच्चक्खाणापच्चक्खाणी, उससे अपच्चक्खाणी असख्यात गुण।

मनुष्य मे सबसे थोडे पच्चक्खाणी, उससे पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणी सख्यात गुण, उससे अपच्चक्खाणी असख्यात गुण। (इनमे सम्मूर्च्छिम मनुष्य सम्मिलित है)।

८ अहो भगवन्! जीव शाश्वत है या अशाश्वत?

हे गौतम! द्रव्य की अपेक्षा जीव शाश्वत है और पर्याय की अपेक्षा अशाश्वत है। इसी प्रकार २४ ही दण्डक समझना चाहिये।

काम-भोगादि

श्री भगवती सूत्र के सातवे शतक के सातवे उद्देशे मे 'काम भोगादि' का थोकड़ा इस प्रकार है।

१ अहो भगवन्! उपयोग-सहित गमनागमनादि क्रिया करते हुए सवर युक्त अनगार को इरियावही (ऐर्यापथिकी) क्रिया लगती है या सापरायिकी क्रिया लगती है?

हे गौतम! अकषायी सवृत्त अनगार, सूत्र विधि से चलता है। इसलिए उसे इरियावही क्रिया लगती है, सापरायिकी क्रिया नही लगती। कपाय-सहित, सूत्र-विरुद्ध चलने वाले अनगार को सापरायिकी क्रिया लगती है।

२ अहो भगवन् ! काम कितने प्रकार के हैं ?

हे गौतम ! काम दो प्रकार के हैं—शब्द और रूप।

अहो भगवन् ! काम रूपी है या अरूपी ? सचित्त है या अचित्त ? जीव है या अजीव ?

हे गौतम ! काम रूपी है, अरूपी नही। काम सचित्त भी है और अचित्त भी है, तथा जीव भी है और अजीव भी है।

अहो भगवन् ! काम जीवो के होता है या अजीवो के ?

हे गौतम ! काम जीवो के होता है, अजीवो के नही।

३ अहो भगवन् ! भोग कितने प्रकार के हैं ?

हे गौतम ! भोग तीन प्रकार के है—गध, रस और स्पर्श।

अहो भगवन् ! भोग रूपी है या अरूपी ? सचित्त है या अचित्त ? जीव है या अजीव ?

हे गौतम ! भोग रूपी है, अरूपी नही। भोग सचित्त भी हैं और अचित्त भी तथा भोग जीव भी है और अजीव भी है।

अहो भगवन् ! भोग जीवो के होता है या अजीवो के ?

हे गौतम ! भोग जीवो के होता है, अजीवो के नही।

४ अहो भगवन् ! नारकी के नेरिये कामी हैं या भोगी ?

हे गौतम ! नेरिये कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा कामी है और घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय तथा स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं। इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक, तियंच पचेन्द्रिय और मनुष्य—ये १५ दण्डक कहना चाहिए।

चौइन्द्रिय जीव, चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी है। तेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय, और एकेन्द्रिय (पाँच स्थावर) ये सभी कामी नही, भोगी हैं।

अल्प-बहुत्व–सबसे थोड़े कामी-भोगी, उनसे नो कामी-नो भोगी (सिद्ध) अनन्त गुण और उनसे भोगी अनन्त गुण।

प्रत्यनीक

श्री भगवती सूत्र के आठवे शतक के आठवे उद्देशे मे 'प्रत्यनीक' का अधिकार इस प्रकार है।

प्रत्यनीक का अर्थ है–द्वेषी, विरोधी, निन्दक, वैरी।

१ अहो भगवन्! गुरु के कितने प्रत्यनीक हैं ?

हे गौतम! गुरु के तीन प्रत्यनीक है–१ आचार्य का प्रत्यनीक, २ उपाध्याय का प्रत्यनीक और ३ स्थविर का प्रत्यनीक।

२ अहो भगवन्! गति सम्बन्धी कितने प्रत्यनीक हैं ?

हे गौतम! गति सम्बन्धी तीन प्रत्यनीक है, १ इहलोक प्रत्यनीक–इन्द्रियादि के प्रतिकूल अज्ञान कष्ट सहने वाला, २ परलोक-प्रत्यनीक–इन्द्रियो के विषय-भोगो मे तल्लीन रहने वाला, ३ उभयलोक प्रत्यनीक–चोरी आदि द्वारा इन्द्रियो के विषय-भोगो मे तल्लीन रहकर दोनो लोक बिगाड़ने वाला।

३ अहो भगवन् ! समूह-प्रत्यनीक कितने हैं ?

हे गौतम ! समूह-प्रत्यनीक तीन हैं—१ कुल (एक गुरु के शिष्य) का प्रत्यनीक, २ गण (बहुत गुरुओ के शिष्य) का प्रत्यनीक, ३ सघ (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) का प्रत्यनीक।

४ अहो भगवन् ! अनुकम्पा-प्रत्यनीक कितने हैं ?

हे गौतम ! अनुकम्पा सम्बन्धी तीन प्रत्यनीक हैं—१ तपस्वी का प्रत्यनीक, २ ग्लान (रोगी साधु) का प्रत्यनीक और ३ शैक्ष (नवदीक्षित साधु) का प्रत्यनीक।

५ अहो भगवन् ! श्रुत-प्रत्यनीक कितने हैं ?

हे गौतम ! श्रुत-प्रत्यनीक तीन है—१ सूत्र का प्रत्यनीक, २ अर्थ का प्रत्यनीक और ३ तदुभय (सूत्र अर्थ दोनो) का प्रत्यनीक।

६ अहो भगवन् ! भाव-प्रत्यनीक कितने हैं ?

हे गौतम ! भाव-प्रत्यनीक तीन है—१ ज्ञान-प्रत्यनीक, २ दर्शन-प्रत्यनीक और ३ चारित्र-प्रत्यनीक।

व्यवहार

श्री भगवती सूत्र के आठवे शतक के आठवे उद्देशे मे 'व्यवहार' का अधिकार इस प्रकार है।

१ अहो भगवन् ! व्यवहार कितने प्रकार के है ?

हे गौतम ! * व्यवहार पाच प्रकार के है–१ आगम

---

* मोक्षाभिलाषी जीवो की प्रवृत्ति और निवृत्ति को तथा प्रवृत्ति निवृत्ति के ज्ञान को व्यवहार कहते है।

१ आगम-व्यवहार–केवलज्ञान, मन पर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व और दस पूर्व का ज्ञान–'आगम' कहलाता है। आगम ज्ञान से चलाई हुई प्रवृत्ति-निवृत्ति को 'आगम-व्यवहार' कहते है।

२ श्रुत-व्यवहार (सूत्र व्यवहार)–आचारकल्प आदि श्रुतज्ञान कहलाता है। श्रुतज्ञान से चलाई हुई प्रवृत्ति-निवृत्ति को 'श्रुत व्यवहार' कहते है।

३ आज्ञा-व्यवहार–अतिचारो की आलोचना करने के लिये, किसी गीतार्थ साधु ने अपने अगीतार्थ शिष्य के साथ, दूसरे देश में रहे हुए गीतार्थ साधु के पास, गूढ़ अर्थ वाले पद भेजे। उन गूढ़ अर्थ वाले पदो को समझ कर उस गीतार्थ साधु ने वापिस गूढ अर्थ वाले पदो में अतिचारो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त भेजा। इसे 'आज्ञा-व्यवहार' कहते हैं।

४ धारणा-व्यवहार–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विचार करके गीतार्थ साधु ने जिस अपराध में जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसकी धारणा से वैसे ही अपराध में उसी प्रकार का प्रायश्चित्त देना 'धारणा-व्यवहार' कहलाता है। अथवा कोई साधु, सभी छेद सूत्र नहीं सीख सकता हो, उसे गुरु महाराज जो प्रायश्चित्त पद सिखावे, उनको धारण करना 'धारणा-व्यवहार' कहलाता है।

५ जीत-व्यवहार–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा शारीरिक बल, धैर्य आदि की हानि का विचार करके जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, वह 'जीत-व्यवहार' कहलाता है अथवा गीतार्थ साधु मिल कर जो शास्त्रों से अविरोधी एव पूर्वपुरुषो द्वारा आचरित मर्यादा बांधते है, वह 'जीत-व्यवहार' कहलाता है।

व्यवहार, २ श्रुत (सूत्र) व्यवहार, ३ आज्ञा-व्यवहार, ४ धारणा-व्यवहार और ५ जीत-व्यवहार ।

इन पांच व्यवहारो मे से जिसके पास आगम ज्ञान हो, उसको आगम ज्ञान से व्यवहार चलाना चाहिये, वहाँ शेष ४ व्यवहारो की जरूरत नही । जिसके पास आगम ज्ञान न हो, तो उसे श्रुत (सूत्र) से व्यवहार चलाना चाहिये, वहाँ शेप तीन व्यवहारो की आवश्यकता नही । श्रुत नही हो, तो आज्ञा से व्यवहार चलाना चाहिए, वहाँ शेष दो की अपेक्षा नही । आज्ञा व्यवहार नही हो,तो धारणा से व्यवहार चलाना चाहिए । धारणा-व्यवहार नही हो, तो जीत-व्यवहार से काम चलाना चाहिए ।

इन पांच व्यवहारो से उचित प्रवृत्ति और पाप से निवृत्ति करता और कराता हुआ साधु, भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है ।

कर्म और परीषह

श्री भगवती सूत्र के आठवे शतक के आठवे उद्देशे मे 'कर्म और परीषह' का अधिकार इस प्रकार है ।

१ अहो भगवन् ! कर्म प्रकृतिय कितनी हैं ?

हे गौतम ! कर्म प्रकृतियाँ आठ है–१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गौत्र और ८ अन्तराय ।

२ अहो भगवन् ! परीषह कितने हैं ?

हे गौतम ! परीषह २२ है-* १ क्षुधा परीषह, २ पिपासा

---

* १ क्षुधा परीषह–भूख का कष्ट ।
२ पिपासा परीषह–प्यास की वेदना ।
३ शीत परीषह–ठण्ड का परीषह ।
४ उष्ण परीषह–गरमी का दु:ख ।
५ दशमशक परीषह–डांस, मच्छर, खटमल आदि का ।
६ अचेल परीषह–नग्नता अथवा प्रमाणोपेत (प्रमाण युक्त)वस्त्रो का ।
७ अरति परीषह–सयम में अरति–अरुचि उत्पन्न हो तो आर्तध्यान होकर कष्ट वेदे ।
८ स्त्री परीषह–स्त्रियो से होने वाला कष्ट ।
९ चर्या परीषह–चलने फिरने से या विहार में होने वाला कष्ट ।
१० निषद्या परीषह–स्वाध्याय आदि करने की भूमि में किसी प्रकार का उपद्रव होने अथवा बैठे रहने से होने वाला कष्ट ।
११ शय्या परीषह–रहने के स्थान अथवा सस्तारक (संथारा) की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट ।
१२ आक्रोश परीषह–कठोर वचन सुनने से होने वाला कष्ट ।
१३ वध परीषह–लकडी आदि से पीटा जाने पर होने वाला दुःख ।
१४ याचना परीषह–भिक्षा मांगने में होने वाला कष्ट ।
१५ अलाभ परीषह–भिक्षा आदि के न मिलने पर होने वाला कष्ट ।
१६ रोग परीषह–रोग के कारण होने वाला कष्ट ।
१७ तृण स्पर्श परीषह–घास पर सोते समय शरीर में चुभने से या मार्ग में चलते तृण आदि पैर में चुभने से होने वाला कष्ट ।
१८ जल्ल परीषह–शरीर और वस्त्र आदि में मैल जमने से होने

परीषह, ३ शीत परीषह, ४ उष्ण परीषह, ५ दशमशक परी-षह, ६ अचेल परीषह, ७ अरति परीषह, ८ स्त्री परीषह, ९ चर्या परीषह, १० निषद्या परीषह, ११ शय्या परीषह, १२ आक्रोश परीषह, १३ वध परीषह, १४ याचना परीषह, १५ अलाभ परीषह, १६ रोग परीषह, १७ तृणस्पर्श परीषह, १८ जल्ल परीषह, १९ सत्कार-पुरस्कार परीषह, २० प्रज्ञा परीषह, २१ अज्ञान परीषह और २२ दर्शन परीषह।

२ अहो भगवन् ! कितने कर्मों के उदय से परीषह आते हैं ?

हे गौतम ! ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्त-राय, इन चार कर्मों के उदय से परीषह आते हैं।

ज्ञानावरणीय के उदय से प्रज्ञा परीषह और अज्ञान परीषह आते हैं।

वेदनीय के उदय से ११ परीषह होते हैं—क्षुधा परीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, उष्ण परीषह, दशमशक परीषह, चर्या परीषह, शय्या परीषह, वध परीषह, रोग परीषह, तृण-स्पर्श

वाला कष्ट।

१९ सत्कार-पुरस्कार परीषह—जनता द्वारा मान-पूजा मिलने पर हर्षित न होना और मान-पूजा न मिलने पर खेदित न होना।

२० प्रज्ञा परीषह—प्रज्ञा—बुद्धि का गर्व न करना।

२१ अज्ञान परीषह—विशिष्ट बुद्धि न होने पर खेदित न होना।

२२ दर्शन परीषह—दूसरे मत वालो की ऋद्धि तथा आडम्बर को देख कर सम्यक्त्व से विचलित न होना।

परीषह, और जल्ल परीषह।

मोहनीय कर्म के उदय से ८ परीषह होते है। दर्शन-मोहनीय के उदय से एक–दर्शन परीषह और चारित्र-मोहनीय के उदय से सात परीषह होते हैं। यथा–अचेल परीषह, अरति परीषह, स्त्री परीषह, निषद्या परीषह, आक्रोश परीषह, याचना परीषह और सत्कार-पुरस्कार परीषह।

अन्तराय कर्म के उदय से एक अलाभ परीषह होता है।

३ अहो भगवन्! एक जीव के एक साथ कितने परीषह होते हैं?

हे गौतम! सात कर्म बन्धक (तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थानवर्ती) और आठ कर्म (तीसरे को छोड कर सात गुणस्थान तक) बाधने वाले जीव के २२ परीषह होते हैं, परतु वह एक समय में २० परीषह तक वेदता है। शीत, उष्ण–इन दोनो परीपहो मे से एक वेदता है, और चर्या, निसीहिया–इन दोनो मे से एक वेदता है।

छह कर्मो के (आयुष्य और मोह वर्ज कर) बन्धक सरागी छद्मस्थ दसवे गुणस्थान मे तथा एक वेदनीय कर्म के बन्धक वीतरागी छद्मस्थ को (ग्यारहवे-बारहवें गुणस्थान मे) १४ परीपह (२२ मे से मोहनीय कम के ८ परीषहो को छोडकर) होते हैं, किन्तु एक साथ १२ परीपह वेदते हैं (शीत उष्ण मे से एक और चर्या, शय्या मे से एक वेदते हैं)।

तेरहवे गुणस्थान मे एक कर्म के बन्धक को और चौदहवें गुणस्थान मे अबन्धक को वेदनीय के ११ परीषह होते हैं।

इन मे से एक साथ ६ वेदते हैं (शीत और उष्ण मे से एक तथा चर्या और शय्या मे से एक)।

आराधना

श्री भगवती सूत्र के आठवे शतक के दशवे उद्देशे मे 'आराधना' का विधान इस प्रकार है।

१ अहो भगवन्! आराधना कितने प्रकार की है?

हे गौतम! आराधना तीन प्रकार की है। यथा–१ ज्ञान आराधना+ २ दर्शन आराधना और ३ चारित्र आराधना।

ज्ञान आराधना के तीन भेद–१ उत्कृष्ट ज्ञान आराधना, २ मध्यम ज्ञान आराधना और ३ जघन्य ज्ञान आराधना। इसी प्रकार दर्शन आराधना और चारित्र आराधना के भी उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य, ये तीन-तीन भेद हैं।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उत्कृष्ट रुचि को ज्ञानादि की उत्कृष्ट आराधना कहते हैं। मध्यम और जघन्य रुचि को मध्यम और जघन्य आराधना समझनी चाहिए।

उत्कृष्ट ज्ञान आराधना मे दर्शन आराधना दो प्रकार की

+ १ ज्ञान आराधना आठ प्रकार की होती है। इसका विस्तृत विवेचन आगे पृ. नं ८६ में देखें।

२ आठ प्रकार के दर्शनाचार का विस्तृत विवेचन आगे पृ. ६० में देखें।

३ पांच समिति तीन गुप्ति रूप आठ प्रकार के चारित्राचार का निरतिचार पालन 'चारित्र आराधना' है।

होती है, –उत्कृष्ट दर्शन आराधना और मध्यम दर्शन आराधना।

उत्कृष्ट दर्शन आराधना मे ज्ञान आराधना तीनो पाई जाती है।

उत्कृष्ट ज्ञान आराधना मे चारित्र आराधना दो पावे– उत्कृष्ट और मध्यम।

उत्कृष्ट चारित्र आराधना मे ज्ञान आराधना तीन पावे।

उत्कृष्ट दर्शन आराधना मे चारित्र आराधना तीन पावे।

उत्कृष्ट चारित्र आराधना मे उत्कृष्ट दर्शन आराधना की नियमा है*।

उत्कृष्ट ज्ञान आराधना, उत्कृष्ट दर्शन आराधना और उत्कृष्ट चारित्र आराधना वाला जीव, जघन्य उसी भव मे और उत्कृष्ट दो भव मे मोक्ष जाता है।

---

* इसे सरलतापूर्वक समझने के लिए निम्न लिखित अंको की योजना की गई।

३३३, ३३२, ३२२, २३२, २३१, २२२, २२१, २१२, २११, १३३, १३२, १३१, १२२, १२१, ११२, १११,

जहाँ ३ वहाँ 'उत्कृष्ट'। जहाँ २ है वहाँ 'मध्यम' और जहाँ १ है वहाँ 'जघन्य' समझना। जैसे–३३३ के आंक में उत्कृष्ट ज्ञान आराधना, उत्कृष्ट दर्शन आराधना और उत्कृष्ट चारित्र आराधना है। २३१ के आंक में मध्यम ज्ञान आराधना, उत्कृष्ट दर्शन आराधना और जघन्य चारित्र आराधना होती है। इसी प्रकार दूसरे अंको के लिए भी समझना चाहिये।

पहला अंक ज्ञान का, दूसरा दर्शन का और तीसरा चारित्र का सूचक है।

मध्यम ज्ञान आराधना, मध्यम दर्शन आराधना और मध्यम चारित्र आराधना वाला जीव जघन्य दो भव मे और उत्कृष्ट तीन भव मे मोक्ष जाता है।

जघन्य ज्ञान आराधना, जघन्य दर्शन आराधना और जघन्य चारित्र आराधना वाला जीव, जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट ७-८ भव मे मोक्ष जाता है।

तीन जागरणा

श्री भगवती सूत्र के १२ वे शतक के पहले उद्देशे मे 'तीन जागरणा' का वर्णन प्रकार है।

१ अहो भगवन् जागरणा कितने प्रकार की है ?

हे गौतम ! जागरणा तीन प्रकार की है-१ धर्म जागरणा २ अधर्म जागरणा और ३ सुदर्शन जागरणा।

१ धर्म जागरणा के ४ भेद-१ आचार धर्म, २ क्रिया धर्म, ३ दया धर्म और ४ स्वभाव धर्म *।

आचार धर्म के ५ भेद-१ ज्ञानाचार, २ दर्शनाचार, ३ चारित्राचार, ४ तप आचार और ५ वीर्याचार।

ज्ञानाचार के ८ भेद, दर्शनाचार के ८ भेद, चारित्राचार के ८ भेद, तप आचार के १२ भेद, वीर्याचार के ३ भेद-ये सभी मिला कर ३९ भेद हुए।

ज्ञानाचार के ८ भेद-

१ कालाचार-शास्त्र मे जिस समय जो सूत्र पढने की

---

* भेदानुभेद अन्य ग्रन्थो से लिया गया है।

आज्ञा है, उस समय ही उसे पढना ।

२ विनयाचार—ज्ञानदाता गुरु का विनय करना ।

३ बहुमानाचार—ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय मे भक्ति और श्रद्धा का भाव रखना ।

४ उपधानाचार—ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना ।

५ अनिन्हवाचार—ज्ञान पढाने वाले गुरु का नाम नही छिपाना ।

६ व्यञ्जनाचार—सूत्र के पाठ का शुद्ध उच्चारण करना ।

७ अर्थाचार—सूत्र का शुद्ध एवं सत्य अर्थ करना ।

८ तदुभयाचार—सूत्र और अर्थ (दोनो) को शुद्ध पढना और समझना ।

दर्शनाचार के ८ भेद

१ निशकित—वीतराग सर्वज्ञ के वचनो मे सदेह नही करना ।

२ नि काक्षित—परदर्शन (मिथ्यामत) की इच्छा नही करना ।

३ निर्विचिकित्सा—धर्म-क्रिया के फल के विषय मे सन्देह नही करना ।

४ अमूढदृष्टि—पाखण्डियो (मिथ्यामत) का आडम्वर देख कर उससे मोहित नही होना ।

५ उपवृहा—गुणी पुरुपो को देख कर उनके गुणो की प्रशसा करना तथा स्वय भी उन गुणो को प्राप्त करने का प्रयत्न करना ।

६ स्थिरीकरण—धर्म से डिगते प्राणी को धर्म मे स्थिर करना ।

७ वात्सल्य–अपने धर्म और साधर्मियो से प्रेम रखना।

८ प्रभावना–वीतराग-प्ररूपित धर्म की उन्नति करना, प्रचार करना तथा कृष्ण वासुदेव और श्रेणिक राजा के समान प्रभावना (प्रकाशित) करना।

चारित्राचार के ८ भेद–१ ईर्या समिति, २ भाषा समिति, ३ एषणा समिति, ४ आदान-भड-मात्र-निक्षेपणा समिति, ५ उच्चार-प्रश्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण परिस्थापनिका समिति, ६ मन गुप्ति, ७ वचन गुप्ति और ८ काय गुप्ति।

तप आचार के १२ भेद–छह प्रकार का बाह्य तप और छह प्रकार का आभ्यन्तर तप।

बाह्य तप के ६ भेद–१ अनशन, २ ऊनोदरी, ३ भिक्षाचरी, ४ रस-परित्याग, ५ कायक्लेश और ६ प्रतिसंलीनता।

आभ्यन्तर तप के ६ भेद–१ प्रायश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान और ६ कायोत्सर्ग। तप के ये १२ भेद हैं। इस लोक और परलोक मे सुख आदि की वाछा रहित तप करना अथवा आजीविका रहित तप करना, ये तप के १२ आचार हैं।

वीर्याचार के ३ भेद–१ धर्म के कार्य मे बल-वीर्य को छिपावे नही, २ पूर्वोक्त ३६ आचार मे उद्यम करे और ३ शक्ति अनुसार धर्म कार्य करे। ये तनो मिला कर आचार धर्म के ३९ भेद हुए।

२ क्रिया धर्म-करणसत्तरि के ७० भेद––

पिंडविसोही समिई, भावणा-पडिमा-इंदिय-णिग्गहो य।
पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहं चेव करणं तु ॥

अर्थ–४ प्रकार की पिण्ड-विशुद्धि, ५ समिति, १२ भावना, १२ भिक्षु-प्रतिमा, ५ इन्द्रियो का निरोध, २५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्ति, ४ अभिग्रह, ये सभी मिला कर ७० भेद हुए।

चरणसत्तरि के ७० भेद–

वय-समणधम्म, संजम-वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
णाणाइतीय तव, कोह-णिग्गहाइ चरणमेयं ॥

अर्थ–५ महाव्रत, १० यतिधर्म, १७ प्रकार का सयम, १० प्रकार की वैयावच्च, ब्रह्मचर्य की ९ वाड, ३ रत्न (ज्ञान दर्शन चारित्र) १२ प्रकार का तप, ४ कषाय का निग्रह, ये सभी मिला कर चरणसत्तरि के ७० भेद हुए।

३ **दयाधर्म के ८ भेद–**

१ स्वदया–अपनी आत्मा को पाप से बचाना।

२ परदया–दूसरे जीवो की रक्षा करना।

३ द्रव्य दया–देखादेखी दया पालना या लज्जा, कुलाचार एव दबाव से अथवा द्रव्य प्राणो की दया करना।

४ भाव दया–ज्ञान से जीव को जीवात्मा जान कर उस पर अनुकम्पा करना। जीव को धर्म मे जोड कर परम सुखी बनाने के भाव।

५ व्यवहार दया–श्रावक के लिये जिस प्रकार दया पालना कहा है, उसी प्रकार दया पालना। कोई भी कार्य करते हुए

यतना रखना।

६ निश्चय दया—अपनी आत्मा को कर्म-बन्धन से छुडाना। पुद्गल पर वस्तु है, उस पर से ममता उतार कर और उसका परिचय छोड़ कर आत्मगुण मे रमण करना। जीव का कर्म-रहित शुद्ध स्वरूप प्रकट करना। यह निश्चय-दया चौदहवे गुणस्थान के अन्त मे पूर्णरूप से प्राप्त होती है।

७ स्वरूप दया—किसी जीव को मारने के लिए पहले उसको खूब खिला-पिला कर मोटा ताजा करे, सार-सभाल करे। यह ऊपर से दिखावे मात्र की दया है, क्योकि इसके पीछे उसको मारने के परिणाम हैं। जैसे—उत्तराध्ययन सूत्र के सातवे अध्ययन मे बकरे का दृष्टान्त दिया गया है।

८ अनुबन्ध दया—जीव को ऊपर से कष्ट तो दे, किन्तु भाव है उसको सुख-शान्ति पहुँचाने के। जैसे—माता, पुत्र का रोग मिटाने के लिये उसे कडवी औषधी पिलावे। यद्यपि वह ऊपर से कडवी औषधी पिलाती है, किन्तु मन मे उसका भला चाहती है। पिता पुत्र को अच्छी शिक्षा देने के लिये ऊपर से ताडना-तर्जना करता है, मारता-पीटता है, किन्तु मन से उसका भला चाहता है, गुण वढाना चाहता है। डॉक्टर, रोगी के अग की चीर-फाड करता है। ऊपर से देखने मे वह भयकर दिखता है, किन्तु मन का परिणाम उसका रोग मिटा कर अच्छा करने का है।

४ स्वभाव धर्म—जीव अथवा अजीव की परिणति को 'स्व-

भाव धर्म' कहते है। इसके २ भेद हैं-एक तो शुद्ध स्वभाव रूप-शुद्ध परिणति। दूसरी कर्म के सयोग से 'अशुद्ध परिणति'। इसे 'विभाव परिणति' कहते है।

जीव और पुद्गल के विभाव परिणाम को दूर करके जीव अपने ज्ञानादि गुण मे रमण करे, वह जीव का स्वभाव-धर्म है। एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श, यह पुद्गल का शुद्ध स्वभाव धर्म है। धर्मास्तिकाय का चलन गुण, अधर्मास्तिकाय का स्थिर गुण, आकाशास्तिकाय का अवकाश गुण और काल का वर्तना गुण है। ये चारो स्वभाव-धर्म है, विभाव-धर्म नही। ये चारो अपने स्वभाव को नही छोडते। इसलिये यह इनका शुद्ध स्वभाव-धर्म है। यह चार प्रकार की धर्म जागरणा कही गई।

२ अधर्म जागरणा-ससार मे धन, कुटुम्ब, परिवार का सयोग मिलाना, उनके लिए आरम्भादिक करना, धन की रक्षा करना, उसमे एकाग्र दृष्टि रखना। यह अधर्म जागरणा है।

३ सुदक्खु जागरणा-'सु' का मतलब है-भली, अच्छी और 'दक्खु' का मतलब है-चतुराई वाली जागरणा अर्थात् सुदर्शन जागरणा। यह जागरणा श्रावक के होती है, क्योकि श्रावक सम्यग्ज्ञान दशन सहित है। वह धन कुटुम्बादिक को तथा विषय-कषाय को अहितकारी समझता है। इनसे देशत निवृत होता है। उदय भाव से उदासीनपने रहता है, तीन मनोरथ चितवता है। यह सुदर्शन जागरणा है।

भव-भ्रमण

श्री भगवती सूत्र के १२ वे शतक के ७ वे उद्देशे मे 'भव-भ्रमण' का वर्णन इस प्रकार है।

१ अहो भगवन् ! यह लोक कितना वडा है ?

हे गौतम ! यह लोक असख्यात कोडाकोडी योजन का लम्बा-चौड़ा विस्तार वाला है।

२ अहो भगवन् ! इतने वडे लोक मे क्या कोई एक भी ऐसा आकाश-प्रदेश है, जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण नही किया हो ?

हे गौतम ! 'नो इणट्ठे समट्ठे'—ऐसा एक भी आकाश-प्रदेश खाली नही रहा है, जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण नही किये हो। यथा—* बकरियो के बाडे का दृष्टात। नरक आदि

---

* जैसे—कोई पुरुष १०० बकरियों के लिए एक विशाल वाडा बनवावे और उसमें कम से कम दो, तीन और अधिक से अधिक एक हजार बकरियो को रक्खें और उसमें उनके लिए खूब घास-पानी डाल दे। यदि बकरियाँ वहाँ कम से कम एक, दो, तीन दिन और अधिक से अधिक छ महीनें तक रहें, तो उस वाढे का ऐसा कोई परमाणु-पुद्गल मात्र प्रदेश उन बकरियो की मिगणिया, मूत्र आदि से तथा खुर, नख आदि से अस्पर्शित तो रह भी सकता है। परन्तु इस विशाल लोक में लोक के शाश्वत भाव की अपेक्षा, ससार के अनादि भाव की अपेक्षा, नित्य भाव की अपेक्षा, कर्मों की अधिकता की अपेक्षा तथा जन्म मरण की अधिकता की अपेक्षा से इस लोक में ऐसा कोई भी आकाश प्रदेश नहीं, जहां जीव न जन्मा हो और न मरा हो।

सभी स्थानो मे, सभी जीव त्रस-स्थावरपने अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं, परन्तु तीसरे देवलोक से वारहवे देवलोक तक तथा नव ग्रैवेयको मे देवीपने उत्पन्न नही हुए और पाँच अनुत्तर विमानो में देवपने और देवीपने उत्पन्न नही हुए ।

३ अहो भगवन् ! यह जीव, सभी जीवो के मातापने, पितापने, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधूपने उत्पन्न हुआ ?

हाँ गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार सभी जीव भी इस जीव के माता-पिता आदि परिवारपने उत्पन्न हुए है ।

४ अहो भगवन् ! यह जीव, सभी जीवो के शत्रुपने, वैरीपने, घातक, वधक, प्रत्यनीक और मित्रपने उत्पन्न हुआ है ?

हाँ गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार सभी जीव भी इस जीव के शत्रुपने आदि उत्पन्न हुए है। इसी प्रकार यह जीव सभी जीवो का राजा, युवराज यावत् सार्थवाह, दास, चाकर, शिष्य और शत्रुपने, अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुआ है और सभी जीव भी इसी प्रकार इस जीव के राजापने यावत् शत्रुपने अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए है। क्योकि लोक शाश्वत है, अनादि है, जीव नित्य है, अपने कर्मानुसार जन्म-मरण करता है। इससे जीव संसार मे परिभ्रमण करता है ।

उपयोग

श्री भगवती सूत्र के १३ वे शतक के पहले दूसरे उद्देशे मे उपयोग का विधान इस प्रकार है।

उपयोग १२ हैं–१ मतिज्ञानोपयोग, २ श्रुतज्ञानोपयोग, ३ अवधिज्ञानोपयोग ४ मन पर्ययज्ञानोपयोग, ५ केवलज्ञानोपयोग, ६ मतिअज्ञानोपयोग, ७ श्रुतअज्ञानोपयोग, ८ विभंगज्ञानोपयोग, ९ चक्षुदर्शनोपयोग, १० अचक्षुदर्शनोपयोग, ११ अवधिदर्शनोपयोग १२ केवलदर्शनोपयोग।

१ पहली, दूसरी और तीसरी नारकी मे जीव ८ उपयोग ले कर जाते हैं–३ ज्ञान, ३ अज्ञान, २ दर्शन, (अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन) = ८। ७ उपयोग ले कर निकलते है,–३ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दर्शन (अचक्षु और अवधिदर्शन) = ७ । = ८७

२ चौथी, पांचवी और छठी नारकी मे ८ उपयोग ले कर जाते हैं पूर्ववत् और ५ उपयोग ले कर निकलते हैं–२ ज्ञान, २ अज्ञान, १ दर्शन–अचक्षुदर्शन = ५ । = ८५ ।

३ सातवी नारकी मे ५ उपयोग ले कर जाते हैं–३ अज्ञान २ दर्शन (अचक्षु और अवधिदर्शन) = ५ । ३ उपयोग ले कर निकलते हैं (२ अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन = ३)। = ५३

४ भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिपी मे ८ उपयोग ले कर जाते हैं, पहली नारकीवत् और ५ उपयोग ले कर निकलते हैं (चौथी नारकीवत्)। = ८५

५ पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक मे ८ उपयोग ले कर

जाते है, पहली नारकीवत् और ७ उपयोग ले कर निकलते हैं (पहली नारकीवत्) = ८७

६ पाँच अनुत्तर विमान मे ५ उपयोग ले कर जाते हैं-३ ज्ञान, २ दर्शन (अचक्षु और अवधिदर्शन) = ५। और ५ ही उपयोग ले कर निकलते है। = ५५

७ पाँच स्थावर मे ३ उपयोग ले कर जाते है-२ अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन। और ये ३ ही उपयोग ले कर निकलते हैं। = ३३

८ तीन विकलेन्द्रिय मे ५ उपयोग ले कर जाते हैं-२ ज्ञान २ अज्ञान, १ अचक्षु दर्शन = ५ और ३ उपयोग ले कर निकलते है-२ अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन। = ५३

९ तिर्यच पचेन्द्रिय मे ५ उपयोग ले कर जाते है-२ ज्ञान २ अज्ञान, १ अचक्षुदर्शन। और ८ उपयोग ले कर निकलते है। पहली नारकी मे उत्पत्ति वत्। = ५८

१० मनुष्य मे ७ उपयोग ले कर जाते है (३ ज्ञान, २ अज्ञान २ दर्शन-अचक्षु, अवधिदर्शन = ७) और ८ उपयोग ले कर निकलते है, पहली नारकी में उत्पत्तिवत्। = ७८
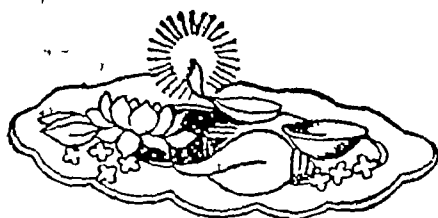
समकित के ६७ बोल

पहले बोले श्रद्धान ४, दूसरे बोले लिंग ३, तीसरे बोले विनय के १० प्रकार, चौथे बोले शुद्धि ३, पाँचवे बोले लक्षण ५, छठे बोले दूषण ५, सातवे बोले भूषण ५, आठवे बोले प्रभावना ८, नौवे बोले आगार ६, दसवे बोले यतना ६, ग्यारहवे बोले भावना ६, बारहवे बोले स्थान ६। ये सभी मिला कर ६७ बोल हुए। अब इनकी व्याख्या दी जाती है–

पहला बोल–चार श्रद्धान—

१ परमार्थ का परिचय करे, अर्थात् नव तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करे।
२ परमार्थ के जानने वालो की सेवा करे।
३ जिसने सम्यक्त्व वमन कर दिया (छोड दिया) हो, उसकी सगति नही करे।
४ कुतीर्थियो की सगति से दूर रहे।

दूसरा बोल–तीन लिंग—

१ जैसे तरुण पुरुष राग-रग मे अनुराग रखता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी मे अनुरक्त रहे।
२ जैसे तीन दिन का भूखा मनुष्य, मिष्ठान्न का भोजन रुचि सहित करता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी आदर सहित सुने।

३ जैसे अनपढ को पढने की चाह रहती है और पढने का सुयोग मिलते ही हर्षित होता है, उसी प्रकार वीतराग की वाणी सुन कर हर्षित होवे ।

तीसरा बोल–विनय के १० प्रकार—

१ अरिहंत भगवान् की विनय-भक्ति करे ।
२ सिद्ध भगवान् की विनय-भक्ति करे ।
३ आचार्य महाराज की विनय-भक्ति करे ।
४ उपाध्यायजी महाराज की विनय-भक्ति करे ।
५ स्थविर महाराज की विनय-भक्ति करे ।
६ कुल (साधु-समुदाय) की विनय-भक्ति करे ।
६ गण (गच्छ) की विनय-भक्ति करे ।
८ चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) की विनय-भक्ति करे ।
९ साधर्मी की विनय-भक्ति करे ।
१० क्रियावान् की विनय-भक्ति करे ।

चौथा बोल–तीन शुद्धि—

१ मन-शुद्धि–मन से श्री वीतराग देव का ध्यान करे, परन्तु किसी अन्य देव को मन मे नही लावे ।
२ वचन-शुद्धि–वचनो से श्री वीतराग देव का गुणगान करे, किन्तु किसी अन्य देव की प्रशसा नही करे ।
३ काय-शुद्धि–काया से श्री वीतराग देव को वन्दन-नमस्कार करे, परन्तु किसी अन्य देव को नही करे ।

पाँचवाँ बोल–पाँच लक्षण—

१ शम (प्रशम)–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का उदय न होना।

सम–शत्रु-मित्र पर समभाव रखना।

२ सवेग–वैराग्य भाव–मोक्ष की अभिलाषा होना।

३ निर्वेद–आरम्भ-परिग्रह से निवृत्त होना, ससार से उदासीन होना।

४ अनुकम्पा–दूसरे जीव को दुखी देख कर दया आना।

५ आस्था–जिन-वचन पर दृढ विश्वास रखना।

छठा बोल–सम्यक्त्व के पाँच दूषण—

१ शका–जिन भगवान् के वचनो मे सदेह रखना दोष है।

२ काक्षा–अन्यमतियो का आडम्बर देख कर उनकी चाहना करना दोष है।

३ वितिगिच्छा–करणी के फल मे सन्देह रखना अथवा साधु-साध्वी के मलिन वस्त्र देख कर घृणा करना।

४ पर पाखण्डी प्रशंसा–अन्य मत वालो की प्रशसा करना।

५ पर पाखण्डी संस्तव–अन्य तीर्थियो के साथ आवागमन रखना और उनकी संगति करना दोष है।

सातवाँ बोल–सम्यक्त्व के पाँच भूषण—

१ जिन-शासन मे निपुण होवे।

२ जिन-शासन की प्रभावना करे और उसके गुणो को दीपावे–प्रकट करे।

ग्यारहवाॅ बोल—छ. भावना—

१ जीव है और जीव का लक्षण चेतना है।

२ जीव द्रव्य नित्य-शाश्वत है।

३ जीव आठ कर्मों का कर्त्ता है।

४ जीव आठ कर्मों का भोक्ता है।

५ भव्य जीव कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते है।

६ सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र और सम्यग्तप-ये मोक्ष के उपाय हैं।

बारहवां बोल—छः स्थान—

१ धर्म रूपी वृक्ष की सम्यक्त्व रूपी जड है।

२ धर्म रूपी नगर की सम्यक्त्व रूपी फाटक है।

३ धर्म रूपी महल की सम्यक्त्व रूपी नीव है।

४ धर्म रूपी आभूषणो की सम्यक्त्व रूपी पेटी है।

५ धर्म रूपी वस्तुओ की सम्यक्त्व रूपी दूकान है।

६ धर्म रूपी भोजन का सम्यक्त्व रूपी थाल है।

पच्चीस क्रिया

क्रिया से कर्मों का बन्ध होता है। कर्म-वन्ध की कारण क्रियाएँ पच्चीस प्रकार की हैं। इनका वर्णन स्थानाग सूत्र स्था २ उ १ तथा स्था ५ उ २ मे इस प्रकार है।

१ **कायिकी क्रिया**–शरीर आदि योगो के व्यापार से होने वाली हलन चलनादि क्रिया।

इस के दो भेद हैं–१ अनुपरत कायिकी–विरति के अभाव में असयमी जीव के शरीरादि से होने वाली क्रिया। २ दुष्प्रयुक्त कायिकी–अयतना से शारीरिक आदि प्रवृत्ति से होती क्रिया।

२ **आधिकरणिकी**– चाकू, छुरी, तलवार, कुदाल आदि से होने वाली क्रिया। इसके भी दो भेद हैं–

१ सयोजनाधिकरणिकी–टूटे हुए या विखरे हुए साधनो को ठीक दुरुस्त तथा एकत्रित करके काम के लायक वनाना। २ निर्वर्तनाधिकरणिकी–नये साधन वनवा कर उपयोग करना।

३ **प्राद्वेषिकी**–ईर्षा, द्वेष, मत्सरता आदि अशुभ परिणाम रूप।

इसके दो भेद हैं–१ जीव प्राद्वेपिकी–मनुष्य, पशु आदि किसी भी जीव पर द्वेष–क्रोध आदि होना। २ अजीव प्राद्वेपिकी–वस्त्र, पात्र, मकान आदि अरुचिकर अजीव वस्तु पर द्वेष करना।

अथवा तीन भेद–१ स्व, २ पर और ३ तदुभय पर अशुभ परिणाम लाना।

४ **पारितापनिकी**– किसी को मार पीट कर अथवा कठोर वचन कह कर क्लेश पहुँचाना, दुःखी करना, कष्ट देना। इनके भी दो भेद

हैं—१ 'स्वहस्त पारितापनिकी'—अपने हाथ से या वचन से कष्ट पहुँचाना ।

२ 'परहस्त पारितापनिकी'—दूसरो के द्वारा दुःख पहुँचाना ।

दूसरी प्रकार से इसके तीन भेद हैं—१ स्वय क्लेशित—दु खी होना, २ दूसरे को दु खी करना, ३ स्व और पर को दु ख देना ।

५ प्राणातिपातिकी—प्राणो का नाश करने रूप क्रिया । इसके भी दो भेद है—१ स्वहस्त प्राणातिपातिकी और २ पर-हस्त प्राणातिपातिकी । दूसरी प्रकार से इसके तीन भेद है,—१ स्वात्मघात, २ अन्य जीवो की हिंसा और ३ अपनी तथा दूसरों की हिंसा करना ।

६ आरम्भिकी—यह क्रिया दो प्रकार से होती है १ जीव आरम्भिकी—छ काया के जीवो का आरम्भ करने से । अजीव आरम्भिकी— कपडा, कागज, मृत कलेवर आदि अजीव वस्तुओ को नष्ट करने से होने वाली क्रिया ।

७ पारिग्रहिकी—इसके भी दो भेद है—१ जीवपारिग्रहिकी—कुटुम्ब, परिवार, दास, दासी, गाय, भैसादि चतुष्पद, शुकादि पक्षी, धान्य, फल आदि स्थावर जीवो को ममत्व भाव से अपनाना २ अजीवपारिग्रहिकी—सोना, चांदी, मकान, वस्त्र, आभूषण, शयन आदि अजीव वस्तुओ पर ममत्व भाव रखना ।

८ मायाप्रत्यया—छल, कपट से तथा कषाय के सद्भाव मे लगने वाली क्रिया । इसके दो भेद है—१ आत्मभाव वक्रता

हृदय की कुटिलता–अन्तर में कुछ और तथा बाहर में कुछ और इस प्रकार आत्मा में ठगाई के भाव होना। और २ परभाव वक्रता–खोटे तोल, नाप आदि से दूसरो को हानि पहुँचाना, विश्वास जमा कर ठग लेना आदि। इसके भी दो भेद हैं–१ सजीव वस्तुओ मे किंचित् भी विरति के भाव नही होना और २ अजीव वस्तुओ मे विरति का भाव बिलकुल नही होना।

९ **अप्रत्याख्यानप्रत्यया**– विरति के अभाव में यह क्रिया होती है।

१० **मिथ्यादर्शनप्रत्यया**–सम्यक्त्व के अभाव में अथवा तत्त्व सम्बन्धी अश्रद्धा या कुश्रद्धा के कारण लगने वाली क्रिया। इसके भी दो भेद हैं–१ 'न्यूनाधिक मिथ्यादर्शनप्रत्यया'–श्री जिनेश्वर देव के कथन से कम अथवा अधिक श्रद्धान करना। और २ 'तद्व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्यया' –आत्मा का अस्तित्व ही नहीं मानना, अथवा न्यूनाधिक मानने रूप मिथ्यात्व के सिवाय–जीव को अजीव, अजीव को जीव आदि खोटी मान्यता रखना। इसमें अन्य सभी प्रकार के मिथ्यात्व का समावेश हो जाता है।

११ **दृष्टजा**–जीव अथवा अजीव पदार्थ को देखने से होने वाले राग-द्वेषमय परिणाम।

१२ **स्पर्शजा**–जीव अथवा अजीव के स्पर्श से होने वाली राग-द्वेष की परिणति।

१३ **प्रातीत्यिकी**–जीव और अजीव रूप बाह्य वस्तु के आश्रय से उत्पन्न राग-द्वेष और उससे होने वाली क्रिया।

१४ **सामन्तोपनिपातिकी**–जीव और अजीव वस्तुओ के किये हुए सग्रह को देख कर लोग प्रशंसा करे और उस प्रशसा को सुन कर

हर्षित होना। इस प्रकार बहुत से लोगो के द्वारा अपनी प्रशसा सुन कर हर्षित होने से यह क्रिया लगती है। यह भी जीव और अजीव के भेद से दो प्रकार की होती है।

१५ **स्वहस्तिकी**—अपने हाथ में ग्रहण किए हुए जीव को मारने-पीटने रूप तथा अपने हाथ में ग्रहण किये हुए जीव से दूसरे जीव को मारने-पीटने रूप। इसके दो भेद है—१ जीव स्वहस्तिकी और अजीव स्वहस्तिकी।

१६ **नैसृष्टिकी**—किसी वस्तु को फेकने से होने वाली क्रिया। इसके दो भेद है—१ जीव नैसृष्टिकी—खटमल, यूका आदि को पटक देने, फेंकने या फव्वारे से जल छोडने आदि से होने वाली क्रिया। और २ अजीव नैसृष्टिकी—बाण फेंकने, लकडी, वस्त्र आदि फेंकने से होने वाली क्रिया।

१७ **आज्ञापनिका**—दूसरे को आज्ञा देकर कराई जाने वाली क्रिया अथवा दूसरो के द्वारा लगवाई जाने वाली क्रिया। इसके दो भेद हैं—१ जीव आज्ञापनिका और २ अजीव आज्ञापनिका।

१८ **वैदारिणी**—विदारण करने से होने वाली क्रिया। यह भी जीव और अजीव के भेद से दो प्रकार की होती है।

अथवा—विचारणिका—जीव और अजीव के व्यवहार—लेन-देन में दो व्यक्तियो को समझा कर सौदा पटाने रूप (दलाल की तरह) या किसी को ठगने के लिए किसी वस्तु की प्रशसा करने से लगने वाली क्रिया।

१९ **अनाभोगप्रत्यया**—अनजानपने से—उपयोग-शून्यता से होने वाली क्रिया। इसके दो भेद है—१ अनायुक्ता दानता—वस्त्र-पात्रादि को बिना देखे ग्रहण करने और रखने रूप—अप्रतिलेखना से।

२ अनायुक्त प्रमार्जनता–असावधानी से प्रतिलेखना प्रमार्जना करने से लगने वाली क्रिया।

२० **अनवकांक्षा प्रत्यया**–हिताहित की उपेक्षा से लगने वाली क्रिया। इसके स्व और पर–दो भेद हैं–१ अपने हित की अपेक्षा नहीं रख कर अपने शरीर आदि को हानि पहुँचाने रूप और २ पर-हित की अपेक्षा नहीं रख कर, दूसरो को हानि पहुँचाने रूप।

अथवा–इस लोक और परलोक की परवाह नहीं कर के दोनो लोक बिगाड़ने रूप क्रिया।

२१ **प्रेम प्रत्यया**–राग से लगने वाली क्रिया। इसके भी दो भेद हैं–१ माया से और २ लोभ से।

२२ **द्वेष प्रत्यया**–इसके भी दो भेद हैं,–१ क्रोध से और २ मान से।

२३ **प्रायोगिकी**–इसके तीन भेद हैं–१ मन का दुष्प्रयोग करना, २ वचन का अशुभ प्रयोग करना और ३ काया का बुरा प्रयोग करने रूप क्रिया।

२४ **सामुदानिकी**–बहुत से लोग मिल कर एक साथ, एक ही प्रकार की क्रिया करे, अच्छे-बुरे दृश्य देखे, या आरम्भ जन्य कार्यों को साथ मिल कर करे, उसे सामुदानिकी क्रिया कहते हैं। इसके तीन भेद हैं–१ सान्तर सामुदानिकी, २ निरन्तर सामुदानिकी और ३ तदुभय सामुदानिकी।

२५ **ईर्यापथिकी**–कषाय-रहित जीवो को योग मात्र से होने वाली क्रिया। इसके तीन भेद हैं–१ उपशातमोह वीतराग, २ क्षीण-मोह वीतराग और ३ सयोगी केवली को लगने वाली क्रिया।

जीव के भेद ५६३ हैं। यथा—

नारकी के १४ भेद, (सात नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त)।

तिर्यंच के ४८ भेद—

२२ पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय, इन चार प्रकार के स्थावर जीवो के प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर, तथा पर्याप्त और अपर्याप्त–ऐसे चार भेदो से कुल १६ भेद हुए। वनस्पतिकाय के सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक, इन तीन के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये ६ भेद हुए। इस प्रकार पाच स्थावर के कुल २२ भेद हुए।

६ वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरेन्द्रिय, इन तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे ६ भेद हुए।

२० पंचेन्द्रिय तिर्यंच पाच प्रकार के–१ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उरपरिसर्प और ५ भुजपरिसर्प। ये पाचो ही असंज्ञी और पाचो ही सज्ञी। ये १० भेद हुए और इनके पर्याप्त, और अपर्याप्त, ऐसे २० भेद हुए।

इस प्रकार तिर्यंच जीवो के कुल ४८ भेद हुए।

मनुष्य के ३०३ भेद—

कर्मभूमिज मनुष्य के १५ भेद हैं। यथा—५ भरत * ५ ऐरवत और ५ महाविदेह मे उत्पन्न मनुष्यो के १५ भेद। अकर्मभूमिज (भोगभूमिज) मनुष्य के ३० भेद हैं। यथा—५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवास, ५ रम्यक्वास, ५ हैमवत और ५ ऐरण्यवत क्षेत्रो मे उत्पन्न मनुष्यो के ३० भेद। ५६ अन्तरद्वीपो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो के ५६ भेद। ये सब मिला कर गर्भज मनुष्य के १०१ भेद होते हैं। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से २०२ भेद होते हैं और इन १०१ गर्भज मनुष्यो की अशुचि मे उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य के १०१ भेद अपर्याप्त। कुल मिला कर मनुष्य के ३०३ भेद होते हैं।

देव के १९८ भेद—

१० भवनपति के १० भेद—१ असुरकुमार २ नागकुमार ३ सुवर्णकुमार ४ विद्युत्कुमार ५ अग्निकुमार ६ उदधिकुमार ७ द्वीपकुमार ८ दिशाकुमार ९ पवनकुमार और १० स्तनितकुमार।

१५ परमाधार्मिक देवो के १५ भेद हैं। यथा—१ अम्ब २ अम्बरीष ३ श्याम ४ शवल ५ रौद्र ६ महारौद्र ७ काल ८ महाकाल ९ असिपत्र १० धनुष ११ कुम्भ १२ वालुका १३

---

* पांच भरत इस प्रकार है—जम्बूद्वीप में १ भरत, धातकी खंड में २ और पुष्करार्द्ध में २, ये ५ हुए। इसी प्रकार ऐरवत और महाविदेह

वैतरणी १४ खरस्वर और १५ महाघोष।

२६ वाणव्यन्तर के २६ भेद हैं। जैसे–पिशाचादि ८ (१ पिशाच २ भूत ३ यक्ष ४ राक्षस ५ किन्नर ६ किम्पुरुष ७ महोरग ८ गन्धर्व)। आणपण्णे आदि ८ (१ आणपन्ने २ पाणपण्णे ३ इसिवाई ४ भूयवाई ५ कन्दे ६ महाकन्दे ७ कूह्मण्डे ८ पयगदेवे)। जृम्भक १० (१ अन्न जृम्भक २ पान जृम्भक ३ लयन जृम्भक ४ शयन जृम्भक ५ वस्त्र जृम्भक ६ फल जृम्भक ७ पुष्प जृम्भक ८ फलपुष्प जृम्भक ९ विद्या जृम्भक और १० अग्नि जृम्भक)।

१० ज्योतिषी देवो के ५ भेद–१ चन्द्र, २ सूर्य ३ ग्रह ४ नक्षत्र और ५ तारा। इनके चर (भ्रमणशील) और अचर (स्थिर) के भेद से दस भेद हो जाते है।

१२ वैमानिक देवो के कल्पोपपन्न और कल्पातीत दो भेद हैं। इनमे कल्पोपपन्न के १२ भेद हैं। जैसे–१ सौधर्म २ ईशान ३ सनत्कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्म ६ लातक ७ महाशुक्र ८ सहस्रार ९ आणत १० प्राणत ११ आरण और १२ अच्युत।

९ कल्पातीत के दो भेद–ग्रैवेयक और अनुत्तर वैमानिक। ग्रैवेयक के ९ भेद–१ भद्र २ सुभद्र ३ सुजात ४ सुमनस ५ सुदर्शन ६ प्रियदर्शन ७ आमोह ८ सुप्रतिबद्ध और ९ यशोधर।

भी है और अकर्मभूमिज भी।

५ अनुत्तर वैमानिक के पाँच भेद हैं। जैसे—१ विजय २ वैजयन्त ३ जयत ४ अपराजित और ५ सर्वार्थसिद्ध।

३ किल्विषिक देव—१ त्रैपल्योपमिक २ त्रैसागरिक और ३ त्रयोदश सागरिक ×।

९ लौकान्तिक देवो के नौ भेद—१ सारस्वत २ आदित्य ३ वन्हि ४ वरुण ५ गर्दतोयक ६ तुषित ७ अव्यावाध ८ आग्नेय और ९ अरिष्ट।

इस प्रकार १० भवनपति, १५ परमाधार्मिक, १६ वाण-व्यन्तर, १० जृम्भक, १० ज्योतिषी, १२ वैमानिक, ३ किल्वि-षिक, ९ लौकातिक, ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर-वैमानिक। कुल मिला कर ९९ भेद हुए। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से देव के १९८ भेद होते हैं।

उपरोक्त ५६३ भेदो का इक्कीस द्वारो से निरूपण किया जाता है,—

द्वार—१ जीव, २ गति, ३ इन्द्रिय, ४ काय, ५ योग, ६ वेद, ७ कषाय, ८ लेश्या, ९ सम्यक्त्व, १० ज्ञान, ११ दर्शन, १२ संयम, १३ उपयोग, १४ आहार, १५ भाषक, १६ परित्त, १७ पर्याप्त, १८ सूक्ष्म, १९ सन्नी, २० भव्य और २१ चरम।

× समानाकार में स्थित प्रथम और दूसरे देवलोक के नीचे त्रैपल्योपमिक, तीसरे और चौथे देवलोक के नीचे त्रैसागरिक और छठे देवलोक के नीचे त्रयोदस सागरिक किल्विषिक देव रहते हैं।

१ जीव द्वार—	कुल	न.	ति.	म.	दे०
१ समुच्चय जीव मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ गति द्वार—					
१ नरक गति मे	१४	१४			
२ तिर्यच गति मे	४८		४८		
३ तिर्यंचिनी मे	१०		१०		
४ मनुष्य गति मे	३०३			३०३	
५ मनुष्यिनी मे	२०२			२०२	
६ देव गति मे	१९८				१९८
७ देवी मे	१२८				१२८
८ सिद्ध भगवान् मे	०	०	०	०	०
३ इन्द्रिय द्वार—					
१ सइंद्रिय मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ एकेन्द्रिय मे	२२		२२		
३ बेइद्रिय, तेइद्रिय, चौरेन्द्रिय–प्रत्येक मे	२		२-२-२		
४ पचेन्द्रिय मे	५३५	१४	२०	३०३	१९८
५ अनिन्द्रिय मे	१५			१५	
६ श्रोतेन्द्रिय मे	५३५	१४	२०	३०३	१९८
७ चक्षु इन्द्रिय मे	५३७	१४	२२	३०३	१९८
८ घ्राण इन्द्रिय मे	५३९	१४	२४	३०३	१९८
९ रसन इन्द्रिय मे	५४१	१४	२६	३०३	१९८
१० स्पर्श इन्द्रिय मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
११ श्रोत इन्द्रिय के अलद्धिये में	४३		२८	१५	
१२ चक्षु " "	४१		२६	१५	

	कुल	न.	ति.	म.	दे०
१३ घ्राणेन्द्रिय अलद्धिये मे	३६		२४	१५	
१४ रसना " "	३७		२२	१५	
१५ स्पर्श " "	१५			१५	

४ काय द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे०
१ सकाया मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ पृथ्वी, अप्, तेऊ वायुकाय-प्रत्येक मे	४		४-४ ४-४		
३ वनस्पतिकाय मे	६		६		
४ त्रसकाय मे	५४१	१४	२६	३०३	१९८
५ अकाय मे	०	०	०	०	०

५ योग द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे०
१ सयोगी मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ मनयोगी मे	२१२	७	५	१०१	९९
३ वचन योगी मे	२२०	७	१३	१०१	९९
४ काय योगी मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
५ चार मन के, तीन वचन के ७ योग मे	२१२	७	५	१०१	९९
६ व्यवहार भाषा मे	२२०	७	१३	१०१	९९
७ औदारिक काय योग मे	३५१		४८	३०३	
८ औदारिक मिश्र काय योग	२४७		३०	२१७	
९ वैक्रिय काय योग मे	२३३	१४	६	१५	१९८
१० वैक्रिय मिश्र काय	२१९	१४	६	१५	१८४

	कुल	न.	ति.	म.	दे०
११ आहारक और आहारक मिश्र काय योग मे	१५			१५	
१२ कार्मण काय योग मे	३४७	७	२४	२१७	९९
१३ अयोगी मे	१५			१५	

६ वेद द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे०
१ सवेदी मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ पुरुष वेद मे	४१०		१०	२०२	१९८
३ स्त्री वेद मे	३४०		१०	२०२	१२८
४ नपुसक वेद मे	१९३	१४	४८	१३१	
५ एकात पुरुष वेद मे	७०				७०
६ " नपुसक वेद मे	१५३	१४	३८	१०१	
७ एक वेद मे	२२३	१४	३८	१०१	७०
८ दो वेद मे	३००			१७२	१२८
९ तीन वेद मे	४०		१०	३०	
१० अवेदी मे	१५			१५	

७ कषाय द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे०
१ सकषायी, क्रोध, मान माया, लोभ, कषायी में	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ अकषायी मे	१५			१५	

८ लेश्या द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे०
१ सलेशी मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
८ कृष्ण, नील, कापोत लेशी मे	४५९	६	४८	३०३	१०२

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
३ तेजो लेशी मे	३४३		१३	२०२	१२८
४ पद्म लेशी मे	६६		१०	३०	२६
५ शुक्ल लेशी मे	८४		१०	३०	४४
६ एक लेशी मे	१०६	१०			९६
७ दो लेशी मे	४	४			
८ तीन लेशी मे	१३६		३५	१०१	
९ चार लेशी मे	२७७		३	१७२	१०२
१० पांच लेशी मे	०	०	०	०	०
११ छ लेशी मे	४०		१०	३०	
१२ एकात कृष्ण लेशी मे	४	४			
१३ " नील "	२	२			
१४ " कापोत "	४	४			
१५ " तेजो "	२६				२६
१६ " पद्म "	२६				२६
१७ " शुक्ल "	४४				४४
१८ अलेशी मे	१५			१५	

९ सम्यक्त्व द्वार—

१ सम्यग्दृष्टि मे	२८३	१३	१८	९०	१६२
२ मिथ्यादृष्टि मे	५५३	१४	४८	३०३	१८८
३ मिश्रदृष्टि मे *	१०३	७	५	१५	७६

* मिश्रदृष्टि में देवो के केवल ६७ भेद लेकर कुल ९४ भेद माने जाते रहे और नवग्रैवेयक के पर्याप्ता में मिश्रदृष्टि नहीं मानी जाती रही। किन्तु भगवती सूत्र श १३ उ २ में ग्रैवेयक तक मिश्रदृष्टि होने का उल्लेख है। ऐसा ही उल्लेख श. २४ उ २१ में है और

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
४ एकात सम्यग्दृष्टि मे	१०				१०
५ " मिथ्यादृष्टि मे	२८०	१	३०	२१३	३६
६ एक दृष्टि मे	२९०	१	३०	२१३	४६
७ दो दृष्टि मे	१७०	६	१३	७५	७६
८ तीन दृष्टि मे	१०३	७	५	१५	७६
९ सास्वादन समकित	२१३	१३	१८	३०	१५२
१७ वेदक "	१०३	७	५	१५	७६
११ उपशम "	२०५	१३	१०	३०	१५२
१२ क्षायोपशमक "	२७५	१३	१०	९०	१६२
१३ क्षायिक "	२६२	८	२	९०	१६२

१० ज्ञान द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
१ मति श्रुत ज्ञान मे	२८२	१३	१८	९०	१६२
२ अवधि ज्ञान मे	११०	१३	५	३०	१६२
३ मन.पर्यवज्ञान व केवलज्ञान मे	१५			१५	
४ मति-श्रुत अज्ञान मे	५५३	१४	४८	३०३	१८८
५ विभग ज्ञान मे	२२२	१४	५	१५	१८८

११ दर्शन द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
१ चक्षु दर्शन मे	५३७	१४	२२	३०३	१९८
२ अचक्षु दर्शन मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८

की चतुर्विधा नामक तृतीय प्रतिपत्ति के द्वितीय वैमानिकोद्देशक में भी ऐसा ही उल्लेख है। अतएव मिश्रदृष्टि में देवों के ७६ और कुल १०३ भेद होने चाहिए। इसी प्रकार तीन दृष्टि और वेदक-सम्यक्त्व में भी समझना चाहिए।

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
३ अवधि दर्शन मे	२४७	१४	५	३०	१९८
४ केवलदर्शन मे	१५			१५	

१२ संयत द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
१ समुच्चय संयति मे	१५			१५	
२ सामायिक, सूक्ष्म-सपराय और यथा-ख्यात चारित्र मे	१५			१५	
३ छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्ध चारित्र मे	१०			१०	
४ सयतासयत मे	२०		५	१५	
५ असयति मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
६ नो सयति, नो असयति, नो सयतासयति मे	०	०	०	०	०

१३ उपयोग द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
१ साकार और अनाकार उपयोग मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८

१४ आहारक द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
१ आहारक मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ अनाहारक मे	३४७	७	२४	२१७	९९

१५ भाषक द्वार—

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
१ भाषक मे	२२०	७	१३	१०१	९९
२ अभाषक मे	३५८	७	३५	२१७	९९

१६ परित्त द्वार—	कुल	न.	ति.	म.	दे०
१ ससार परित मे *	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ संसार अपरित मे	५५३	१४	४८	३०३	१८८
३ नो परित नो अपरित में	०	०	०	०	०
१७ पर्याप्त द्वार—					
१ पर्याप्त मे	२३१	७	२४	१०१	९९
२ अपर्याप्त मे	३३२	७	२४	२०२	९९
३ नो पर्याप्ता नो अपर्याप्ता मे	०	०	०	०	०
१८ सूक्ष्म द्वार—					
१ सूक्ष्म मे	१०		१०		
२ बादर में	५५३	१४	३८	३०३	१९८
३ नो सूक्ष्म नो बादर	०	०	०	०	०
१९ सन्नी द्वार—					
१ सन्नी मे	४२४	१४	१०	२०२	१९८
२ असन्नी में	१९१	१	३८	१०१	५१
३ नो सन्नी नो असन्नी मे	१५		१५		
२० भव्य द्वार—					
१ भव्य मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ अभव्य मे	५५३	१४	४८	३०३	१८८
३ नो भव्य नो अभव्य	०	०	०	०	०

* काय परित्त में ५५९—१४।४४।३०३।१९८।

काय अपरित में ४—० । ४ । ० । ० ।

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
२१ चरम द्वार—					
१ चरम मे	५६३	१४	४८	३०३	१९८
२ अचरम मे	५५३	१४	४८	३०३	१८८
२२ सहनन द्वार—					
१ वज्र-ऋषभ-नाराच सहनन मे	२१२		१०	२०२	
२ मध्यके चार सहनन मे	४०		१०	३०	
३ छेवट्ट सहनन मे	१७९		४८	१३१	
२३ संस्थान द्वार—					
१ सम चतुरस्र सस्थान मे	४१०		१०	२०२	१९८
२ मध्यम चार सस्थान मे	४०		१०	३०	
३ हुण्डक संस्थान मे	१९३	१४	४८	१३१	
२४ क्षेत्र द्वार—					
१ भरत ऐरवत क्षेत्र*	६३		४८	१५	
२ महाविदेह क्षेत्र मे	६३		४८	१५	
३ जम्बू द्वीप मे	७५		४८	२७	
४ लवण समुद्र मे	२१६		४८	१६८	
५ धातकी खण्ड मे	१०२		४८	५४	
६ कालोदधि समुद्र मे	४६		४६	०	
७ अर्ध पुष्कर द्वीप मे	१०२		४८	५४	
८ अढाई द्वीप मे	३५१		४८	३०३	
९ अढाई द्वीप के बाहर	४६		४६†		

* एक भरत की अपेक्षा से ५१ ।

† तिर्यंचो में बादर तेउकाय के २ कम हुए ।

	कुल	न.	ति.	म.	दे.
१० नीचा लोक मे	११५	१४	४८	३†	५०*
११ तिरछा लोक मे	४२३		४८	३०३	७२
१२ ऊँचा लोक मे	१२२		४६		७६
१३ सिद्ध शिला मे	१२		१२×		
१४ सिद्ध शिला के ऊपर सातवी नरक के नीचे और लोक के चरमान्त मे	१२		१२∸		
२५ शाश्वत द्वार–					
१५ शाश्वत	२५०	७	४३	१०१	९९
१६ अशाश्वत	३१३	७	५	२०२	९९
२६ अमर द्वार–					
१७ अमर❊	१९२	७		८६	९९
१८ मरने वाला	३७१	७	४८	२१७	९९
२७ गर्भज द्वार–					
१९ गर्भज	२१२		१०	२०२	
२० नो गर्भज	३५१	१४	३८	१०१	१९८

† अधोलोक सलीलावती विजय में मनुष्य है।

* भवनपति देव हैं।

× सूक्ष्म के १० व बादर पृथ्वीकाय के २।

∸ सूक्ष्म के १० व बादर वायुकाय के २।

❊ अपर्याप्त अवस्था में अमर और पर्याप्त में मरने वाले।

पाँच समिति तीन गुप्ति

उत्तराध्ययन अध्य० २४ मे पांच समिति और तीन गुप्ति का वर्णन इस प्रकार है।

पांच समिति–१ ईर्या समिति, २ भाषा समिति, ३ एषणा समिति, ४ आदान-भाण्ड-मात्र निक्षेपणा समिति और ५ उच्चार-प्रश्रवण-खेल-सिंघाण-जल-परिस्थापनिका समिति।

तीन गुप्ति–१ मनो गुप्ति, २ वचन गुप्ति और ३ काय गुप्ति।

इन पूर्वोक्त आठो (पांच समिति और तीन गुप्ति) को 'प्रवचन माता' कहते हैं।

समिति का स्वरूप

समिति–प्राणातिपात (जीव हिंसा) से निवृत्त मुनि का आवश्यक निर्दोष प्रवृत्ति करना 'समिति' कहलाता है। तथा उत्तम परिणामो की चेष्टा को भी 'समिति' कहते हैं। अथवा 'समिति' ऐसी ईर्यादि पांच चेष्टाओ की तान्त्रिकी (आगम सम्बन्धी) संज्ञा है, अर्थात् आगमो का एक पारिभाषिक (सांकेतिक) शब्द है।

१ ईर्या समिति–कार्य उत्पन्न होने पर विवेकपूर्वक गमन करना तथा दूसरे जीवो को किसी प्रकार की हानि नही हो, इस प्रकार उपयोगपूर्वक चलना–'ईर्या समिति' है।

२ भाषा समिति–आवश्यक होने पर निरवद्य (निर्दोष) वचन की प्रवृत्ति करना–'भाषा समिति' है।

३ एषणा समिति–वयालीस दोषो को टाल कर निर्दोष भिक्षादि ग्रहण करना–'एषणा समिति' है।

४ आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति–भाण्ड-मात्र आदि उपकरणो के लेने मे और रखने मे पडिलेहणा और प्रमार्जना की अच्छी प्रवृत्ति–'आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति' है।

५ उच्चार-प्रश्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल परिस्थापनिका समिति–परठने के योग्य उच्चारादि किसी भी वस्तु के परठने मे स्थण्डिल के दस दोषो को टाल कर प्रवृत्ति करना 'उच्चार-प्रश्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल परिस्थापनिका समिति' है।

१ ईर्या समिति

१ ईर्या समिति के चार कारण होते है–१ आलम्वन, २ काल, ३ मार्ग और ४ यतना।

१ आलम्वन–जिस आलम्वन (प्रयोजन) को लेकर भगवान् ने गमन करने की आज्ञा दी है। विना आलम्वन गमन करने की भगवान् की आज्ञा नही है। वह आलम्वन तीन प्रकार

का है–१ ज्ञान (सूत्र, अर्थ, तदुभय) २ दर्शन (दर्शन के कारण-भूत शास्त्र) और ३ चारित्र। सूत्र मे 'तथा' शब्द है, वह द्विकसयोगी, त्रिकसयोगी आदि ७ भंगो की सूचना करने वाला है, वे ७ भग इस प्रकार हैं–१ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ ज्ञान और दर्शन, ५ ज्ञान और चारित्र, ६ दर्शन और चारित्र और ७ ज्ञान दर्शन और चारित्र।

२ काल–ईर्या-समिति का काल तीर्थंकरादि ने दिन ही कहा है। रात्रि मे चक्षु का विषय न होने के कारण पुष्टतर (अत्यन्त जरूरी) आलम्बन के विना गमन करने की तीर्थंकरो की आज्ञा नही है।

३ मार्ग–साधु को गमन करने के लिए उत्पथ (कुपथ) वर्जित मार्ग अर्थात् राज-मार्ग कहा है, क्योकि उजड रास्ते मे चलने से आत्मा तथा सयम की विराधना आदि दोष लगते हैं। इसलिए साधु को हमेशा सन्मार्ग मे ही गमन करना चाहिए।

४ यतना–यतना के चार भेद होते हैं–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव। १ द्रव्य यतना–द्रव्य मे दृष्टि द्वारा जीवादि पदार्थो को देखे और देख कर सयम तथा आत्मा की विराधना का परिहार (दूर) करता हुआ गमन करे। २ क्षेत्र यतना-क्षेत्र से * युगमात्र (धूसरा प्रमाण) अर्थात् चार हाथ प्रमाण आगे की भूमि देखता हुआ गमन करे। ३ काल यतना–काल

* युग का प्रमाण छयानवे (९६) अगुल का होता है। ऐसा समवायाग सूत्र समवाय ९६ तथा भगवती सूत्र शतक ६ उद्देशक ७ के मूल मे है।

से जब तक चलता फिरता रहे तब तक यतना ही से चले-फिरे। ४ भाव यतना-भाव से सावधानीपूर्वक एकाग्र चित्त हो कर इन्द्रियो के अर्थ (विषय) ५ (१ शब्द, २ रूप, ३ गन्ध ४ रस और ५ स्पर्श) तथा स्वाध्याय ५ (१ वाचना, २ पृच्छना, ३ परावर्त्तना, ४ अनुप्रेक्षा और ५ धर्मकथा) इन दस बोलो को वर्ज कर अर्थात् इन दस बातो को नही करता हुआ गमन करे, क्योकि ये दस बोल ईर्या (गति) के उपयोग मे उपघात (हानि) करने वाले हैं। तथा तम्मुत्ती (तन्मूर्त्ति) उसी ईर्या मे ही शरीर को लगाता हुआ, तत्पुरक्कारे (तत्पुरस्कार) उसी ईर्या को उपयोग सहित प्रधानता से स्वीकार करता हुआ अर्थात् ईर्या मे ही काया और मन को तत्पर रखता हुआ उपयोग सहित गमन करे।

×पुन -१ आलम्बन-प्रवचन, संघ, गच्छ और आचार्यादि के कार्य। २ काल-साधुओ के विचरने योग्य अवसर। ३ मार्ग-जिस रास्ते मे बहुत से आदमी चलते फिरते हो अर्थात् राजमार्ग। ४ यतना- उपयोग सहित आगे की भूमि मे युग-मात्र दृष्टि रखना। इन आलम्बनादि चारो पदो कर के एक-एक पद के व्यभिचार (अन्तर) से जो भग होते है, उन भगो द्वारा सोलह प्रकार का गमन कहा है, उन सोलह भगो को यन्त्र द्वारा दिखाते हैं-

× आचाराग सूत्र श्रुत० २ च० १ ईर्येषणा ३ उद्देशक १ निर्युक्ति गाथा २०८।३०९। श्री आगमो० पत्र ३७५।१।२।

ईर्यासमिति के १६ भंगों का यंत्र ।

संकेत 'ऽ' अस्ति, '०' नास्ति

संख्या	आलंबन	काल	मार्ग	यतना	शुद्धादि ।
१	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सर्वथाशुद्ध
२	ऽ	ऽ	ऽ	०	देशत शुद्धाशुद्ध
३	ऽ	ऽ	०	ऽ	"
४	ऽ	ऽ	०	०	"
५	ऽ	०	ऽ	ऽ	"
६	ऽ	०	ऽ	ऽ	"
७	ऽ	०	०	ऽ	"
८	ऽ	०	०	०	"
९	०	ऽ	ऽ	ऽ	"
१०	०	ऽ	ऽ	०	"
११	०	ऽ	०	ऽ	"
१२	०	ऽ	०	०	"
१३	०	०	ऽ	ऽ	"
१४	०	०	ऽ	०	"
१५	०	०	०	ऽ	"
१६	०	०	०	०	सर्वथा अशुद्ध

उपरोक्त यन्त्र द्वारा दिखाए गए सोलह भंगों में से प्रथम भंग सर्वथा शुद्ध है और अन्तिम भंग सर्वथा अशुद्ध है। बीच के जो चौदह भंग हैं, वे देश से शुद्ध और देश से अशुद्ध हैं। उपरोक्त आलम्बनादि चारों ही शुद्ध कारणों से साधु का गमन

शुद्ध माना गया है, अर्थात् सर्वथा शुद्ध प्रथम भग मे ही साधु को गमन करने के लिए श्री तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा है।

२ भाषा समिति

२ भाषा समिति–दूषित वचन का त्याग करना। वचन के दोष–१ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ, ५ हास्य, ६ भय, ७ मौखर्य (वाचालता) और ८ विकथा, इन आठ दोषो में उपयोग रखना अर्थात् एकाग्रता। पूर्वोक्त क्रोधादि की एकाग्रता को दृष्टात द्वारा स्पष्ट करते है–१ क्रोध मे एकाग्रता–जैसे कोई पिता, अति क्रोधित होकर अपने पुत्र के प्रति बोले कि–'तूं मेरा पुत्र नही है' और पास मे खडे हुए मनुष्यो को कहे कि 'बाँधो बाँधो इसे' इत्यादि। २ मान में एकाग्रता–जैसे कोई पुरुष अभिमान से गर्वित होता हुआ बोले कि 'जाति आदि मे मेरी बराबरी करने वाला कोई नही है।' माया मे एकाग्रता–जैसे कोई पुरुप अनजान जगह रहा हुआ दूसरो को ठगने के लिए पुत्रादि के विषय मे बोले कि–'न तो मेरा यह पुत्र है और न मै इसका पिता हूँ' इत्यादि। ४ लोभ मे एकाग्रता–जैसे कोई वणिक दूसरो की वस्तु को भी अपनी कहे। ५ हास्य मे एकाग्रता–जैसे कोई मजाक से कुलीन पुरुष को भी अकुलीन कह कर बुलावे। ६ भय मे एकाग्रता–जैसे किसी ने किसी प्रकार का अकार्य किया और दूसरे ने उससे पूछा कि–'तू तो वही है जिसने अमुक समय अमुक अकार्य किया था ?' तब वह भय से कहे कि–'मै उस समय उस जगह नही था' इत्यादि। ७ मौखर्य में एकाग्रता–जैसे कोई बकवादी, दूसरो की निन्दा करता ही रहे।

८ विकथा (स्त्र्यादि कथा) मे एकाग्रता—जैमे कोई बोले कि ९ अहो ! स्त्री के कटाक्ष कैसे हैं?' इत्यादि। इस प्रकार क्रोधादि मे एकाग्रता होने पर प्राय शुभ भाषा नही बोली जाती। इसलिए इन पूर्वोक्त आठ दोषो को छोड कर वुद्धिमान् साधु को निरवद्य (निर्दोष) और अवसर देख कर परिमित वचन बोलना चाहिये।

पुन—भाषा समिति के चार भेद होते हैं—१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव। १ द्रव्य से—१ कठोर, २ कर्कश ३ छेदक, ४ भेदक, ५ निश्चयात्मक, ६ सावद्य ७ क्लेशोत्पादक और ८ मिश्र, इन आठ भाषाओ को साधु नही बोले। २ क्षेत्र से—रास्ते चलता हुआ बात नही करे। ३ काल से—एक पहर रात्रि जाने के बाद यावत् सूर्योदय तक ऊँचे स्वर (जोर) से नही बोले। ४ भाव से—उपयोग सहित राग-द्वेष उत्पन्न करने वाली भाषा नही बोले। क्रोधादि ८ बोल का वर्जन करे।

३ एषणा समिति

३ एषणा समिति तीन प्रकार की होती है। जैसे—१ गवेषणैषणा, २ ग्रहणैषणा और ३ परिभोगैषणा (ग्रासैषणा)।

१ गवेषणैषणा—आहारादि ग्रहण करने के पहिले शुद्धि-अशुद्धि देखना 'गवेषणैषणा' है।

२ ग्रहणैषणा—आहारादि ग्रहण करते समय शुद्धि-अशुद्धि की सावधानी रखना 'ग्रहणैषणा' है।

३ परिभोगैषणा (ग्रासैषणा)—आहारादि भोगते समय-

शुद्धिअशुद्धि का ध्यान रखना 'परिभोगैपणा' है।

आहार (अशनादि) उपधि (वस्त्र-पात्रादि) और शय्या (मकान पाट, पाटलादि) मे ऊपर कही हुई तीनो एषणा निर्दोष करनी चाहिये। पहली गवेषणैषणा जिसमे आधाकर्मादि सोलह+ उद्गम के दोष और धात्र्यादि सोलह* उत्पादन के दोष, इन बत्तीस दोपो को टाल कर आहारादि की शुद्ध एपणा (खोज) करे। दूमरी ग्रहणैषणा, जिसमे आहारादि ग्रहण करते समय, लेने योग्य वस्तु मे रहे हुए शकितादि दस दोषो× को टाल कर शुद्ध एषणा करे। तीसरी परिभोगैपणा, जिसमे १ पिण्ड (अशनादि) २ शय्या, ३ वस्त्र और ४ पात्र, इन चारो को शुद्धता-

---

+ आहाकम्मु १ द्देसिय २, पूईकम्मे ३ य मीसजाए ४ य। ठवणा ५ पाहुडियाए ६, पाओअर ७ कीय ८ पामिच्चे ९ ॥९२॥ परियट्टिए १० अभिहडे ११, उब्भिन्ने १२ मालोहडे १३ इय। अच्छिज्जे १४ अणिसिट्ठे १५ अज्झोयरए १६ य सोलसमे ॥९३॥ (पिण्डनिर्युक्ति दे०-ला० पत्र ३४।२।२)

* धाई १ दूई २ निमित्ते ३, आजीव ४ वणीमगे ५ तिगिच्छा ६ य कोहे ७ माणे ८ माया ९ लोभे १० य हवति दस एए ॥४०८॥ पुव्वि पच्छा संथव ११ विज्जा, १२ मते १३ य चुन्न १४ जोगे १५ य। उप्पायणाइ दोसा सोलसमे मूलकम्मे १६ य ॥४०९॥ (पिण्ड०-दे० ला०-पत्र० १२१।१।१)

× सकिय १ मक्खिय २ निक्खित्त ३ पिहिय ४ साहरिय ५ दायगु ६ म्मीसे ७। अपरिणय ८ लित्त ९ छड्डिय १० एसणदोसा दस हवति ॥५२०॥ (पिण्ड० दे० ला० पत्र १४७।१।१)

पूर्वक अर्थात् उद्गमादि के दोषो को टाल कर भोगवे। अथवा उद्गमादि के दोषो और उपलक्षण से उत्पादना और एषणा के दोषो को भी दूर करे। तथा १ सयोजना, २ प्रमाण, ३ अगार, धूम और ४ कारण, इन चार दोषो को भी दूर करे। (यहाँ अगार और धूम, इन दोनो दोषो की, मोहनीय कर्म के अन्तर्गत होने के कारण एक पद से विवक्षा की है) इस प्रकार पूर्वोक्त एषणा समिति मे यतना करता हुआ साधु 'तपस्वी' कहलाता है।

पुन ●–एषणा समिति के चार भेद–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव। द्रव्य से उद्गम के १६ दोष, उत्पादना के १६ दोष और एषणा के १० दोष, इन ४२ दोषो को टाल कर शुद्ध अशनादि की गवेषणा करे। २ क्षेत्र से दो कोस के उपरान्त ले जा कर अशनादि नही भोगवे। ३ काल से प्रथम पहर का लिया हुआ अशनादि चौथे पहर मे नही भोगवे। ४ भाव से राग-द्वेष रहित होता हुआ, माडला के पाँच दोषो को टाल कर आहार करे।

४ आदान-भाण्ड-मात्र निक्षेपणा समिति

उपधि दो प्रकार की होती है-१ ओघोपधि और २ औपग्रहिकोपधि, १ ओघोपधि जो हमेशा पास रक्खी जावे, जैसे–रजोहरणादि २ औपग्रहिकोपधि जो संयम (यतना) और अर्थ (प्रयोजन) का कारण होने पर ग्रहण की जावे, जैसे दण्डादि। ऐसे

● साधु का आवश्यक।

दो प्रकार के उपकरण को ग्रहण करता हुआ तथा कही रखता हुआ साधु, विधि युक्त उपयोग पूर्वक प्रवृत्ति करे। वह विधि इस प्रकार है–प्रथम दृष्टि से अवलोकन करे, फिर रजोहरणादि से पूंजे। इस प्रकार यतना करता हुआ साधु, औघिक और औपग्रहिक, इन दोनो प्रकार की उपधि को ग्रहण करे और रक्खे, अथवा दोनो प्रकार–द्रव्य और भाव से सदैव समित (आदान-भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति से युक्त) रहे।

पुन –आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति के चार भेद होते है–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव। १ द्रव्य से भण्ड उपकरण यतना से लेवे और यतना से ही रक्खे तथा मर्यादा से ऊपर न रखे २ क्षेत्र से भण्ड उपकरण इधर-उधर बिखरा हुआ व गृहस्थ के घर पर न रखे। ३ काल से यथा समय पडिलेहणा करे। ४ भाव से राग-द्वेष उत्पन्न करने वाली उपधि न रखे।

५ उच्चारप्रस्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति

१ उच्चार–विष्टा, २ प्रस्रवण–मूत्र, ३ खेल–मुंह से निकलने वाला बलगम, ४ सिंघाण–नाक से निकलने वाला श्लेष्म, ५ जल्ल–शरीर का मैल, तथा ६ आहार–अशनादि, ७ उपधि वर्षाकल्पादि (चौमासे मे ली हुई) ८ देह–शरीर, इतके सिवाय ओर भी कोई कारण आने पर लिया हुआ गोबर आदि जो परठने योग्य हो, तो उन सब को दस विशेषण युक्त स्थण्डिल मे परठे। स्थण्डिल दस विशेषणो वाला होता है–इस प्रकार मन

में धार कर स्थण्डिल मे रहे हुए सब (१०, २४) भगो के जानने के लिए दस विशेषणो के पहले पद में जो 'अनापात' और 'असलोक' ये दो पद है, इन की भग रचना प्रथम बताते हैं—

१ जहाँ स्व-पर और उभय पक्ष वालो का आपात (आवागमन) नही है तथा दूर रहे हुए स्वपक्षादि का सलोक (दृष्टि का पडना) भी नही है। इति प्रथम भंग।

२ जहाँ आपात नही है, किन्तु संलोक है।

३ जहाँ आपात है, किन्तु सलोक नही है।

४ जहाँ आपात भी है और सलोक भी है।

इन चारो भगो में से पहले भगवाला स्थान सर्वथा शुद्ध, है। उस में उच्चारादि परठने के लिए भगवान् की आज्ञा है। दूसरे तीन भगो का निषेध है।

स्थण्डिल के दस विशेषण इस प्रकार हैं— १ 'अणावायमसलोए परस्स,' जहाँ स्वपक्षादि का न तो आपात है और न सलोक है।

२ 'अणुवघाइए'—जहाँ तीन प्रकार का उपघात नही हो, जैसे सयम का उपघात (छह काय की विराधना) आत्मा का उपघात (शरीर को पीडा) प्रवचन का उपघात (जिन-शासन की निन्दा) ये तीन उपघात न हो।

३ 'समे'—जहाँ ऊँची नीची जगह न होकर समतल भूमि हो।

४ 'अझुसिरे'—जहाँ पोलाण न हो, घास-पत्ते आदि से भूमि ढकी हुई नही हो।

५ 'अचिरकालयमि'—जहाँ थोडे काल पहले अग्नि से जली हुई भूमि हो। चिरकाल होने से वहाँ पृथ्वीकायादि

जीव पुन उत्पन्न हो जाते हैं।

६ 'विच्छिन्ने'–जहाँ कम से कम एक हाथ प्रमाण लम्बी-चौडी भूमि अवश्य हो।

७ 'दूरमोगाढे'–जहाँ कम से कम चार अंगुल प्रमाण भूमि अन्दर से अचित्त अवश्य हो।

८ 'णासन्ने'–जहाँ ग्राम आरामादि निकट नही हो।

९ 'बिलवज्जिए'–जहाँ-चूहे, चिटी आदि के बिल नही हो।

१० 'तसपाणवीयरहिए'–जहाँ द्वीन्द्रियादि त्रस जीव तथा शाल्यादि बीज और उपलक्षण से सकल एकेन्द्रिय, ये पूर्वोक्त जीव वहाँ रहे हुए तथा आए हुए नही हो। इन पूर्वोक्त दस वशेषणो वाले स्थण्डिल में उच्चारादि परिठवे।

पुन'–उच्चार-प्रश्रवण-खेल-सिघाण-जल्ल-परिस्थापनिका समिति चार प्रकार की होती है–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव। १ द्रव्य से उच्चारादि ८ वस्तुओ को देख कर परिठवे। २ क्षेत्र से दस प्रकार के शुद्ध स्थण्डिल मे उच्चारादि परिठवे। ३ काल से सायंकाल (थोड़ा दिन शेष रहते हुए) परिठवने योग्य भूमि की पडिलेहणा करे। ४ भाव से परठने को जाते समय 'आवस्सिया २' कह कर जावे, परठने के योग्य भूमि को दृष्टि से देखे तथा पूजे और शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा लेकर चार अगुल ऊँचे से यतनापूर्वक परठवे। परठ कर 'वोसिरे वोसिरे' कहे और उपाश्रय मे प्रवेश करते समय 'निस्सिहि निस्सिहि' कहे। बाद में ईर्यावहिया का काउस्सग्ग करे।

॥ इति समिति का स्वरूप ॥

गुप्ति

गुप्ति ससार के कारणो से, आत्मा की सम्यक् प्रकार से रक्षा करना 'गुप्ति' कहलाता है। तथा मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना भी 'गुप्ति' कहलाता है। अथवा मन वचन और काया की निर्दोष प्रवृत्ति को भी गुप्ति कहते हैं। तथा आगन्तुक कर्मरूपी कचरे को रोकने का नाम गुप्ति है। अथवा साधक के अशुभ योगो का निग्रह करना भी गुप्ति है।

गुप्ति तीन प्रकार की होती है-१ मनोगुप्ति, २ वचनगुप्ति और ३ कायगुप्ति।

मनोगुप्ति

मनोगुप्ति चार प्रकार की होती है-१ सत्या, २ मृषा, ३ सत्यामृषा, ४ असत्यामृषा। १ सत्या-सत् अर्थात् विद्यमान पदार्थ का मन मे चिन्तवन करना-'सत्य मनोयोग' कहलाता है। उस सम्बन्धी मनोगुप्ति, उपचार से 'सत्या' कही जाती है। जैसे-'जगत् मे जीव तत्त्व है'-ऐसा सत्य पदार्थ का चिन्तन करना। २ मृषा-इसके विपरीत मनोयोग सम्बन्धी मनोगुप्ति उपचार से 'मृषा' कही जाती है। जैसे-'जगत् मे जीव तत्त्व नही है'-ऐसे सत् पदार्थ का असत्रूप मे चिन्तन करना। ३ सत्या-मृषा-सत्य और असत्य, इन दोनो मनोयोग सम्बन्धी मनोगुप्ति उपचार से 'मत्यामृषा' कही जाती है, जैसे-आम्रादि विविध वृक्षो के वन को 'यह आम का वन है'-ऐमा चिन्तन करना।

४ असत्यामृषा–सत्य और मृषा, इन दोनो स्वभाव से रहित मनोद्रव्य का व्यापार रूप मनोयोग सम्वन्धी मनोगुप्ति, उपचार से 'असत्यामृषा' कही जाती है। 'जैसे–हे देवदत्त! घडा लाओ,' 'मेरे लिए अमुक वस्तु लाओ,' इत्यादि आदेश निर्देशादि वचन का मन मे चिन्तन करना। इस प्रकार मनोगुप्ति चार प्रकार की होती है। अव इस मनोगुप्ति के स्वरूप को ही कहते हुए ग्रन्थकार उपदेश देते है कि–१ सरभ–मानसिक संकल्प–'मै ऐसा ध्यान करूँगा कि जिससे यह मर जायगा,' इत्यादि। २ समारभ–दूमरो को पीडा उत्पन्न करने वाला उच्चाटनादि सम्बन्धी ध्यान। ३ आरम्भ–अत्यन्त क्लेश पूर्वक दूसरो के प्राणो को हरने मे समर्थ ऐसा अशुभ ध्यान। (अथवा किसी का अनिष्ट चिंतन) इन अशुभ ध्यानो मे प्रवृत्ति करते हुए यतनावान् साधु, मन को निवर्त्तन करे–रोके और शुभ सकल्प मे मन को प्रवर्त्तन करे।

पुन:–मनोगुप्ति चार प्रकार की होती है–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव। जिनमे १ द्रव्य से संक्लिष्ट (खराब) मनोयोग को रोके और शुभ मनोयोग को प्रवर्तावे। २ क्षेत्र से सभी क्षेत्र मे। ३ काल से जिस समय मन प्रवर्तावे उस समय। ४ भाव से उपयोग सहित मन को प्रवर्तावे और सरभ समारभ व आरभ मे मन की प्रवृति न करे।

वचन गुप्ति

वचन गुप्ति भी चार प्रकार की होती है–१ सत्या,

२ मृषा, ३ सत्यामृषा और ४ असत्यामृषा। इनका स्वरूप मनोगुप्ति जैसा समझना चाहिये, किन्तु 'मनोयोग' और 'मनोगुप्ति' के स्थान पर 'वचनयोग' और 'वचनगुप्ति' कहना चाहिए। यहाँ ग्रन्थकार उपदेश देते है कि—१ सरभ—दूसरो को मारने मे समर्थ ऐसी क्षुद्र विद्या उच्चारण के सकल्प को सूचित करने वाला शब्द बोलना, २ समारम्भ—दूसरो को पीडा उत्पन्न करने वाला मंत्र गुणना, ३ आरम्भ—अत्यन्त क्लेश से प्राणियो के प्राणो का नाश करने मे समर्थ ऐसा मन्त्रादि का जपना (अथवा वचन का दुष्ट व्यवहार)। इन सम्रम्भादि मे प्रवृत्ति करते हुए वचन को यतनावान् साधु, निवर्त्तन करे—रोके और शुभ वचन मे प्रवृत्ति करे।

पुन—वचन गुप्ति चार प्रकार की होती है—१ द्रव्य, २ क्षेत्र ३ काल और ४ भाव। १ द्रव्य से अशुभ वचन को रोके और शुभ वचन प्रवर्तावे। २ क्षेत्र से सभी क्षेत्र मे। ३ काल से कार्य आने पर जिस समय बोलना पडे उस समय। ४ भाव से उपयोग सहित वचन बोले और सरभ समारभ व आरभ मे वचन की प्रवृति न करे।

काय गुप्ति

१ खडा रहने मे, २ बैठने मे, ३ सोने मे, ४ किसी कारण से ऊँचा चढने, तथा खाड विगेरे के उल्लघने मे, ५ सीधा चलने मे और ६ इन्द्रियो के विषयो अर्थात् शब्दादि विषयो के व्यापार मे प्रवृत्ति करता हुआ साधु, कायगुप्ति करे। वह इस प्रकार है—१ सम्रम्भ—यष्टिमुष्टयादि से ताडन करने के लिए

तैयार होने मे, २ समारम्भ–दूसरो को परिताप (पीडा) करने वाले लात-घूँसा आदि के प्रहार मे, ३ आरम्भ–प्राणी के वध के लिए यष्टि आदि का उपयोग करने मे प्रवृत्त होते हुए शरीर को यतनावान् साधु, निवर्त्तन करे और शुभ कार्य मे शरीर की प्रवृत्ति करे।

पुन –कायगुप्ति चार प्रकार की होती है–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल और ४ भाव। १ द्रव्य से काया को अशुभ व्यापार से रोके और शुभ व्यापार मे प्रवर्त्तावे। २ क्षेत्र से सभी क्षेत्र मे–जहाँ विचरे। ३ काल से कार्य आने पर जीवन पर्यन्त। ४ भाव से उपयोग सहित खडा रहे, वैठे तथा सोवे।

पूर्वोक्त पाँच समितियाँ श्रेष्ठ चेष्टा रूप चारित्र की प्रवृत्ति मे कही गई है और तीन गुप्तिएँ अशुभ मनोयोगादि मे सर्वथा निवृत्ति मे कही गई है। अपि शब्द से चारित्र की प्रवृत्ति मे भी कही है। उपलक्षण से शुभ अर्थ की निवृत्ति मे भी कही है, क्योकि वचन और काया की निर्व्यापारता को भी 'गुप्ति' कहते हैं।

पूर्वोक्त आठ प्रवचन माता का जो मुनि सम्यक् प्रकार से आचरण करता है, वह बुद्धिमान् साधु, ससार से शीघ्र मुक्त हो जाता है।

॥ इति गुप्ति का स्वरूप ॥

॥ पाँच समिति तीन गुप्ति का थोकड़ा सम्पूर्ण ॥

पच्चीस बोल

पहले बोले गति ४—नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देव गति ।

गति नामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय विशेष को 'गति' कहते हैं ।

दूसरे बोले जाति ५—एकेंद्रिय, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चउरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय ।

जाति नामकर्म के उदय से प्राप्त हुए जीव की एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि रूप पर्याय को 'जाति' कहते हैं ।

तीसरे बोले काया ६—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउ-काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ।

त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से जीव जिस शरीर में उत्पन्न हो, उसे 'काय' कहते हैं ।

१ पृथ्वीकाय–मिट्टी, हीगलू, हडताल, पत्थर, हीरा, पन्ना आदि ।

२ अप्काय–बरसात का पानी, ओस का पानी, गडे का पानी, समुद्र का पानी, धुंअर का पानी, कुआँ, वावडी आदि का पानी ।

३ तेजस्काय–झाल की अग्नि, विजली की अग्नि, वांस

की अग्नि, उल्कापात आदि ।

४ वायुकाय—उक्कलिया-वाय, मडलिया-वाय, घन वाय, तनु वाय, पूर्व वाय, पश्चिम वाय आदि ।

५ वनस्पतिकाय—(वादर) के दो भेद—प्रत्येक और साधारण । वनस्पति का वर्ण काला है । स्वभाव-संस्थान नाना प्रकार का है । एक शरीर मे एक जीव हो उसे 'प्रत्येक' कहते है । जैसे—आम, अगूर, केला, बड, पीपल आदि ।

कन्द-मूल की जाति को 'साधारण वनस्पति' कहते हैं, जैसे—लहशून, सकरकन्द, अदरख, आलू, रतालू, मूली, हरी हलदी, गाजर, लीलण-फूलण आदि । कन्दमूल मे एक सूई के अग्रभाग मे असख्याती श्रेणियाँ हैं । एक-एक श्रेणी मे असख्याता प्रतर है । एक-एक प्रतर मे असख्याता गोला है । एक-एक गोले मे असख्याता शरीर हैं । एक-एक शरीर मे अनन्त जीव हैं ।

त्रसकाय—जो जीव हलन-चलन करे, छाया से धूप मे आवे और धूप से छाया मे जावे उसे 'त्रस' कहते है । उसके चार भेद हैं । बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय । (१) बेइंद्रिय—एक काया और दूसरा मुख, ये दो इद्रियाँ जिसके हो, उसे बेइन्द्रिय कहते है—जैसे शख, कोडी, सीप, लट, कोडा, अलसिया, कृमि (चूरणिया) बाला आदि । (२) तेइन्द्रिय—एक काया, दूसरा मुख, तीसरा नाक, ये तीन इन्द्रियाँ जिसके हो, उसे तेइन्द्रिय कहते हैं—जैसे जू, लीख, चाचड, माकड, कीडा, कुथुआ, कानखजूरा आदि । (३) चउरिन्द्रिय—एक काया, दूसरा मुख, तीसरा नाक और चौथी आँख, ये चार इन्द्रियाँ

जिसके हो, उसको चउरिन्द्रिय कहते हैं–जैसे मक्खी, डास, मच्छर, भँवरा, टिड्डी, पतगिया, कमारी आदि (४) पचेन्द्रिय–एक काया, दूसरा मुख, तीसरा नाक, चौथी आँख और पाँचवा कान, ये पाँच इन्द्रियाँ जिसके हो उसको पचेन्द्रिय कहते हैं, जैसे–गाय, भैस, बैल, हाथी, घोडा, मनुष्य, देव और नारक।

चौथे बोले इन्द्रिय ५–श्रोत्र-इन्द्रिय, चक्षु-इन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना-इन्द्रिय और स्पर्शन-इन्द्रिय।

जीव, तीन लोक के ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इसलिए इसे 'इन्द्र' कहते हैं। उस इन्द्र (जीव) के चिन्ह को 'इन्द्रिय' कहते हैं, अर्थात् इन्द्रिय से जीव पहचाना जाता है, जैसे स्पर्शन इन्द्रिय से एकेन्द्रिय–वृक्षादि जीव पहचाने जाते हैं। दो इन्द्रिय (स्पर्शन और रसना–जीभ) से बेइद्रिय जीव, लट आदि पहचाने जाते हैं, इत्यादि।

पांचवे बोले पर्याप्ति ६—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा (वचन) पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति।

आहार वर्गणा, शरीर वर्गणा, इन्द्रिय वर्गणा, श्वासोच्छ्वास वर्गणा, भाषा वर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओ को शरीर, इन्द्रिय आदि रूप मे परिणमाने (परिवर्तन करने) की शक्ति की पूर्णता को 'पर्याप्ति' कहते हैं।

छठे बोले प्राण १०–श्रोत्रेन्द्रिय-बल प्राण, चक्षु-

रिन्द्रिय-बल प्राण, घ्राणेन्द्रिय-बल प्राण, रसनेन्द्रिय-बल प्राण, स्पर्शनेन्द्रिय-बल प्राण, मनो-बल प्राण, वचन-बल प्राण, काय-बल प्राण, श्वासोच्छ्वास-बल प्राण और आयुष्य-बल प्राण।

जिनके संयोग से यह जीव, जीवन अवस्था को प्राप्त हो और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त हो, उसे प्राण कहते हैं।

सातवें बोले शरीर ५—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस् और कार्मण शरीर।

शरीर–क्षीण होने वाला अर्थात् विनाश होने वाला है, इसलिए इसे 'शरीर' कहते है।

१ उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलो से बना हुआ शरीर–'औदारिक' कहलाता है।

तीर्थंकर और गणधरो का शरीर प्रधान पुद्गलो से बनता है, १ साधारण और सर्वसाधारण का शरीर स्थूल साधारण पुद्गलो से बनता है। मनुष्य और तिर्यञ्च को औदारिक शरीर प्राप्त होता है।

२ जिस शरीर से विविध क्रियाएँ होती है, उसे 'वैक्रिय शरीर' कहते हैं।

विविध क्रियाएँ ये है–एक स्वरूप धारण करना, अनेक स्वरूप धारण करना, छोटा शरीर धारण करना, बडा शरीर धारण करना, आकाश मे चलने योग्य शरीर धारण करना,

भूमि पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य शरीर धारण करना, अदृश्य शरीर धारण करना, इत्यादि अनेक प्रकार की अवस्थाओ को वैक्रिय शरीरधारी जीव कर सकता है।

वैक्रिय शरीर दो प्रकार का है–१ औपपातिक और २ लब्धिप्रत्यय।

देव और नारको का शरीर 'औपपातिक' कहलाता है अर्थात् उनको जन्म से ही वैक्रिय-शरीर मिलता है। लब्धिप्रत्यय शरीर तिर्यंच और मनुष्यो को होता है। मनुष्य और तिर्यच तप आदि के द्वारा प्राप्त की हुई शक्ति विशेष से वैक्रिय शरीर प्राप्त कर लेते हैं।

३ चतुर्दश पूर्वधारी मुनि अन्य क्षेत्र मे वर्त्तमान तीर्थंकर से अपना सदेह निवारण करने के लिए अथवा उनका ऐश्वर्य देखने के लिए जब उस क्षेत्र मे जाना चाहते हैं, तब लब्धि विशेष से जघन्य देशोन एक हाथ उत्कृष्ट एक हाथ प्रमाण अति विशुद्ध स्फटिक के समान निर्मल शरीर निकालते हैं, उस शरीर को 'आहारक शरीर' कहते है।

४ तैजस् पुद्गलो से बना हुआ शरीर 'तैजस्' कहलाता है। इस शरीर की उष्णता से खाये हुए अन्न का पाचन होता है और कोई-कोई तपस्वी क्रोध से तेजोलेश्या के द्वारा औरो को हानि पहुँचाता है, तथा प्रसन्न हो कर शीतललेश्या के द्वारा लाभ पहुँचाता है, वह इसी तैजस्-शरीर के प्रभाव से होता है अर्थात् आहार के पाचन का हेतु तथा तेजोलेश्या और शीतल-लेश्या के निर्गमन का हेतु जो शरीर है, वह 'तैजस्-शरीर'

कहलाता है।

५ कर्मों का वना हुआ शरीर 'कार्मण-शरीर' कहलाता है, अर्थात् जीव के प्रदेशो के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म-पुद्गलो को कार्मण-शरीर कहते है। यह कार्मण-शरीर सभी शरीरो का बीज है। इसी शरीर से जीव अपने मरण-देश को छोड कर उत्पत्ति स्थान पर जाता है।

समस्त ससारी जीवो के तैजस्शरीर, और कार्मणशरीर, ये दो शरीर अवश्य होते है।

आठवें बोले योग १५—सत्य मनोयोग २ असत्य मनोयोग ३ मिश्र मनोयोग ४ व्यवहार मनोयोग ५ सत्य भाषा ६ असत्य भाषा ७ मिश्र भाषा ८ व्यवहार भाषा ९ औदारिक शरीर काययोग १० औदारिक मिश्र शरीर काययोग ११ वैक्रिय शरीर काययोग १२ वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग १३ आहारक शरीर काययोग १४ आहारक मिश्र शरीर काययोग और १५ कार्मण शरीर काय योग।

वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम या क्षय होने पर मन, वचन और काया के निमित्त से आत्म-प्रदेशो के चचल होने को 'योग' कहते हैं। योग के दो भेद है—१ भाव योग और २ द्रव्य योग। भाव योग—पुद्गल-विपाकी शरीर और अगो-पाग नाम-कर्म के उदय से, मनोवर्गणा, भाषावर्गणा और काय-

वर्गणा के अवलम्बन से, कर्म-नोकर्म ग्रहण करने की जीव की शक्ति विशेष को 'भाव योग' कहते हैं। द्रव्य योग–इसी भाव योग के निमित्त से आत्म-प्रदेशो के परिस्पदन (चञ्चल होने) को 'द्रव्य योग' कहते हैं।

नौवें बोले उपयोग १२—पांच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन। ज्ञान ५—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि-ज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान। अज्ञान ३—मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान। दर्शन ४—चक्षु-दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

सामान्य और विशेष रूप से वस्तु का स्वरूप जानना 'उपयोग' कहलाता है। सामान्य रूप से जानना 'दर्शनोपयोग' है और विशेष रूप से जानना 'ज्ञानोपयोग' है।

दसवे बोले कर्म आठ—१ ज्ञानावरणीय २ दर्शना-वरणीय ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय कर्म।

जीव के राग-द्वेष आदि परिणाम के निमित्त से कार्मण वर्गणा रूप पुद्गल स्कन्ध, जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं, उसे 'कर्म' कहते हैं।

ग्यारहवे बोले गुणस्थान १४—१ मिथ्यात्व गुण-स्थान २ सास्वादन गुणस्थान ३ मिश्र गुणस्थान ४ अवि-रति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ५ देशविरत श्रावक गुण-

स्थान ६ प्रमादी साधु गुणस्थान ७ अप्रमादी साधु गुण-स्थान ८ निवृत्ति-बादर गुणस्थान ९ अनिवृत्ति-बादर गुण-स्थान १० सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान ११ उपशांत-मोहनीय गुणस्थान १२ क्षीण-मोहनीय गुणस्थान १३ सयोगी-केवली गुणस्थान और १४ अयोगी केवली गुणस्थान।

मोह और योग के निमित्त से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र रूप आत्मा के गुणो की तारतम्यता (हीनाधिकता) रूप अवस्था विशेष को 'गुणस्थान' कहते हैं।

बारहवें बोले पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय और २४० विकार।

श्रोतेन्द्रिय के तीन विषय—१ जीव शब्द २ अजीव शब्द और ३ मिश्र शब्द।

इसके १२ विकार हैं—१ जीव शब्द, २ अजीव शब्द, ३ मिश्र शब्द, ये ३ शुभ और ३ अशुभ, इन ६ पर राग और ६ पर द्वेष।

चक्षु-इन्द्रिय के पाँच विषय—१ काला, २ नीला, ३ लाल, ४ पीला और ५ श्वेत।

इसके ६० विकार हैं—५ सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र—ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय—१ सुरभिगन्ध और २ दुरभिगन्ध।

इसके १२ विकार हैं–२ सचित्त २ अचित्त, २ मिश्र, इन ६ पर राग और ६ पर द्वेष ।

रसनेन्द्रिय के पाँच विषय—१ तीखा, २ कड़वा, ३ कषैला, ४ खट्टा और ५ मीठा ।

इसके ६० विकार हैं–५ सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र । ये १५ शुभ और १५ अशुभ । इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष ।

स्पर्शनेन्द्रिय के ८ विषय—१ कर्कश (खुरदरा) २ मृदु (कोमल) ३ लघु (हलका) ४ गुरु (भारी) ५ शीत (ठण्ड) ६ उष्ण (गर्म) ७ रुक्ष (लूखा) और ८ स्निग्ध (चिकना) ।

इसके ९६ विकार हैं–८ सचित्त, ८ अचित्त, ८ मिश्र । ये २४ शुभ और २४ अशुभ । इन ४८ पर राग और ४८ पर द्वेष ।

आत्मा, जिन्हे इन्द्रियो द्वारा जानती और अनुभव करती है, उन्हें 'इन्द्रियो के विषय' कहते हैं ।

प्रश्नोत्तर–शरीर मे खुरदरा क्या है ? पांव की एडी । कोमल क्या है ? गले का तालु । भारी क्या है ? हड्डियां । हलका क्या है ? केश । ठण्डा क्या है ? कान की लोल । उष्ण क्या है ? कलेजा । स्निग्ध क्या है ? आंख की कीकी । रूक्ष क्या है ? जीभ ।

तेरहवे बोले मिथ्यात्व के १० भेद—१ जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व २ अजीव को जीव श्रद्धे तो

मिथ्यात्व ३ धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व ४ अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व ५ साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व ६ असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व ७ संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व ८ मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व ९ आठ कर्मो से मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो सिथ्यात्व और १० आठ कर्मो से अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व ।

कुदेव, कुगुरु, कुधर्म और कुशास्त्र पर श्रद्धा करना मिथ्यात्व है और सुदेव, सुगुरु, सुधर्म और सद्शास्त्र पर श्रद्धा नही करना भी मिथ्यात्व है ।

चोदहवें बोले छोटी नव तत्त्व के ११५ भेद ।

तत्त्व के नाम—१ जीव तत्त्व २ अजीव तत्त्व ३ पुण्य तत्त्व ४ पाप तत्त्व ५ आश्रव तत्त्व ६ संवर तत्त्व ७ निर्जरा तत्त्व ८ बन्ध तत्त्व और ९ मोक्ष तत्त्व ।

इनके भेद—जीव के १४, अजीव के १४, पुण्य के ९, पाप के १८, आश्रव के २०, संवर के २०, निर्जरा के १२, बन्ध के ४ और मोक्ष के ४ भेद । ये कुल ११५ हुए ।

१ जीव तत्त्व—

जीव चेतना एव उपयोग लक्षण वाला सुख-दुःख का वेदक पर्याप्ति एव प्राण का धर्ता, आठ कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता, सदाकाल शाश्वत रहे, कभी नष्ट नही होने वाला और असंख्य प्रदेशी है। जीव ज्ञान, दर्शन, सुख और आत्म-शक्ति, इन चार भाव-प्राणो से भूतकाल मे जीया, वर्तमान काल मे जीता है और आगामी काल मे इन्ही चार भाव-प्राणो से जीयेगा, इस लिये इसे 'जीव' कहते है। जीव के मुख्य दो भेद होते हैं—१ ससारी और २ सिद्ध। जो कर्म सहित है, उन्हे 'ससारी' कहते हैं। जो ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म से रहित है, उन्हे 'सिद्ध' कहते हैं।

जीव तत्त्व के १४ भेद इस प्रकार हैं—

१ सूक्ष्म एकेंद्रिय २ बादर एकेंद्रिय ३ बेइंद्रिय ४ तेइंद्रिय ५ चौरिन्द्रिय ६ असन्नी पचेन्द्रिय और ७ सन्नी पचेन्द्रिय। इन सात के अपर्याप्त और ७ के पर्याप्त, ये १४ भेद हुए।

२ अजीव तत्त्व—

अजीव—चेतना-रहित, सुख-दुःख, पर्याप्ति, प्राण, योग, उपयोग और कर्म आदि से सर्वथा रहित और जड़ स्वरूप है।

अजीव तत्त्व के १४ भेद इस प्रकार हैं—

१ धर्मास्तिकाय के तीन भेद—१ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश।

२ अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—१ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश।

३ आकाशास्तिकाय के तीन भेद–१ स्कन्ध २ देश और ३ प्रदेश। ये नौ और १० वाँ काल। ये दस भेद 'अरूपी अजीव' के हैं।

रूपी-पुद्गल के चार भेद–१ स्कन्ध २ देश ३ प्रदेश और ४ परमाणु-पुद्गल। ये चौदह भेद अजीव के हैं।

३ पुण्य तत्त्व—

जो आत्मा को पवित्र करे तथा जिसकी प्रकृति शुभ हो, जो बाँधते हुए कठिन, किन्तु भोगते हुए सुखकारी, शुभ योग से बाँधे, शुभ उज्ज्वल पुद्गलो का बन्ध हो और जिसका फल मीठा हो उसे 'पुण्य' कहते है। पुण्य, धर्म का सहायक भी होता है तथा पथ्य रूप है। पुण्य तत्त्व के ९ भेद इस प्रकार हैं–

१ अन्न पुण्य–भोजन के लिए अन्न देने से पुण्य होता है।
२ पान पुण्य–पीने के लिए पानी देने से पुण्य होता है।
३ लयन पुण्य–स्थान–आश्रय देना।
४ शयन पुण्य–शय्या, पाट-पाटला, बाजोट आदि देना।
५ वस्त्र पुण्य–वस्त्र देना।
६ मन-पुण्य–शुभ मन रखना—दानरूप, शीलरूप, तप-रूप, भाव रूप, विनयरूप और दयारूप आदि शुभ मन रखना–मन-पुण्य है।
७ वचन-पुण्य–मुख से शुभ वचन बोलना।
८ काय-पुण्य–काया द्वारा दया पालना, सेवा-चाकरी

विनय-वैयावच्च करना।

९ नमस्कार-पुण्य—अधिक गुणवान् को नमस्कार करना।

४ पाप तत्त्व—

जो आत्मा को मलिन करे, जो अशुभ योग से बँधे, सुख-पूर्वक बांधा जाय और दुःखपूर्वक भोगा जाय। पाप अशुभ प्रकृति रूप है, जिसका फल कडवा, कठोर और अप्रिय है, जो प्राणी को मैला करे, उसे 'पाप' कहते हैं।

पाप तत्त्व के १८ भेद इस प्रकार हैं—

१ प्राणातिपात—जीवो की हिंसा करना।

२ मृषावाद—असत्य—झूठ बोलना।

३ अदत्तादान—बिना दी हुई वस्तु लेना (चोरी करना)।

४ मैथुन—कुशील सेवन करना।

५ परिग्रह—द्रव्य आदि रखना, ममता रखना।

६ क्रोध—खुद तपना, दूसरो को तपाना, कोपायमान होना।

७ मान—अहंकार (घमंड) करना।

८ माया—कपटाई—ठगाई करना।

९ लोभ—तृष्णा बढाना, मूर्च्छा (गृद्धिपना) रखना।

१० राग—प्रिय वस्तु पर स्नेह रखना, प्रीति करना।

११ द्वेष—अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष करना।

१२ कलह—क्लेश करना।

१३ अभ्याख्यान—झूठा कलंक लगाना।

१४ पैशुन्य—दूसरे की चुगली करना।

१५ परपरिवाद–दूसरे का अवर्णवाद (निन्दा) बोलना।

१६ रति-अरति–पाँच इन्द्रियो के तेईस विषयो मे से मनोज्ञ वस्तु पर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ वस्तु पर नाराज होना और धर्म मे अरुचि होना।

१७ मायामृषावाद–कपट सहित झूठ बोलना।

१८ मिथ्यादर्शन शल्य–कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा रखना।

५ आश्रव तत्त्व

जिसके द्वारा आत्मा मे कर्म आवे, वह आश्रव है। जीव रूपी तालाब मे आश्रव-द्वार रूपी बीस नालो से कर्म रूपी पानी आवे, उसे 'आश्रव तत्त्व' कहते हैं। बीस द्वारो के नाम–

१ मिथ्यात्व–मिथ्यात्व का सेवन करे तो आश्रव।

२ अव्रत–व्रत-पच्चक्खाण नही करे तो आश्रव।

३ प्रमाद–पाँच प्रकार का प्रमाद सेवे तो आश्रव।

४ कषाय–पच्चीस कषाय सेवे तो आश्रव।

५ अशुभ योग–अशुभ योग प्रवर्तावे तो आश्रव।

६ प्राणातिपात–जीव की हिंसा करे तो आश्रव।

७ मृषावाद–झूठ बोले तो आश्रव।

८ अदत्तादान–चोरी करे तो आश्रव।

९ मैथुन–कुशील सेवे तो आश्रव।

१० परिग्रह–धन-धान्य आदि रखे तो आश्रव।

११ श्रोतेन्द्रिय को वश मे नही रखे तो आश्रव।

१२ चक्षुरिन्द्रिय को वश मे नही रखे तो आश्रव ।
१३ घ्राणेन्द्रिय को वश मे नही रखे तो आश्रव ।
१४ रसनेन्द्रिय को वश मे नही रखे तो आश्रव ।
१५ स्पर्शनेन्द्रिय को वश मे नही रखे तो आश्रव ।
१६ मन को वश मे नही रखे तो आश्रव ।
१७ वचन को वश मे नही रखे तो आश्रव ।
१८ काया को वश मे नही रखे तो आश्रव ।
१९ भंड-उपकरण अयतना से लेवे और अयतना से रखे तो आश्रव ।
२० सुई-कुशाग्र मात्र अयतना से लेवे और अयतना से रखे तो आश्रव ।

६ संवर तत्त्व—

आश्रव को रोके उसे 'संवर' कहते हैं। जीव रूपी तालाव मे आश्रव रूपी नालो के द्वारा आते हुए कर्म रूपी पानी को, संवर रूपी पाल बांध कर रोके, उसे 'संवर तत्त्व' कहते हैं। इसके भेद इस प्रकार हैं—

१ समकित संवर ।
२ व्रत-प्रत्याख्यान करे तो संवर ।
३ प्रमाद नहीं करे तो संवर ।
४ कषाय नहीं करे तो संवर ।
५ शुभ योग प्रवर्तावे तो संवर ।
६ अप्राणातिपात—जीव की हिंसा नहीं करे तो संवर ।

७ अमृषावाद–झूठ नही वोले तो सवर।
८ अदत्तादान त्याग–चोरी नही करे तो सवर।
९ अमैथुन–कुशील नही सेवे तो सवर।
१० अपरिग्रह–ममता नही रखे तो सवर।
११ श्रोतेन्द्रिय वश करे तो सवर।
१२ चक्षुरिन्द्रिय वश करे तो सवर।
१३ घ्राणेन्द्रिय वश करे तो सवर।
१४ रसनेन्द्रिय वश करे तो सवर।
१५ स्पर्शनेन्द्रिय वश करे तो संवर।
१६ मन वश करे तो सवर।
१७ वचन वश करे तो सवर।
१८ काया वश करे तो संवर।
१९ भड-उपकरण यतना से लेवे और यतना से रखे तो सवर।
२० सुई-कुशाग्र मात्र यतना से लेवे और यतना से रखे तो सवर।

७ निर्जरा तत्त्व—

आत्मा से कर्मवर्गणा का देशत दूर होना। जीव रूपी कपडा, कर्म रूपी मैल, ज्ञान रूपी पानी, तप-सयम रूपी सोडा-साबुन से धो कर मैल को दूर करे, उसे 'निर्जरा तत्त्व' कहते हैं। इसके बारह भेद हैं। यथा—

१ अनशन २ ऊनोदरी ३ भिक्षाचर्या ४ रस-परित्याग

५ कायक्लेश ६ प्रतिसंलीनता ७ प्रायश्चित्त ८ विनय ९ वैयावृत्य १० स्वाध्याय ११ ध्यान और १२ व्युत्सर्ग ।

१ अनशन—चार प्रकार के या तीन प्रकार के आहार का त्याग करना । २ ऊनोदरी (अवमौदर्य) भोजन की अधिक रुचि होने पर भी कम भोजन करना । ३ भिक्षाचर्या—शुद्ध आहार आदि की गवेषणा करना । ४ रसपरित्याग—विगयादि का त्याग करना (स्वाद जय) ५ कायक्लेश—वीर आसन आदि कष्टकार क्रिया करना । ६ प्रतिसंलीनता—इन्द्रिय, कषाय और योगो को रोकना और स्त्री, पशु-नपुसक-रहित स्थान मे रहना । ७ प्रायश्चित्त—लगे हुए दोषो की आलोचना कर के प्रायश्चित्त ले कर आत्मा को शुद्ध करना । ८ विनय—गुरु आदि की भक्तियुक्त अभ्युत्थानादि से आदर-सत्कार करना । ९ वैयावृत्य—आचार्यादि की सेवा करना । १० स्वाध्याय—शास्त्र की वाचना-पृच्छना आदि करना । ११ ध्यान—मन को एकाग्र कर के शुभ विचारो मे लगाना । १२ व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग) काया के व्यापार का त्याग करना ।

बन्ध तत्त्व—

कषाय के वश हो कर जीव कर्म-पुद्गलो को ग्रहण करे तथा आत्मा के प्रदेश और कर्म-पुद्गल एक साथ क्षीर-नीर के समान मिले तथा लोह-पिण्ड और अग्नि के समान एकमेक हो कर बन्धे, उसे 'बन्ध' कहते हैं ।

दृष्टांत—जीव आठ कर्म से बन्धा हुआ है । जीव और कर्म

लोलीभूत (एकमेक) हैं। जैसे दूध और पानी लोलीभूत है। हस पक्षी की चोच खट्टी होती है। दूध मे चोच डालने से दूध पृथक् और पानी पृथक् हो जाता है। उसी प्रकार जीव रूप हंस, सम्यग्ज्ञान रूपी चोच से जीव और कर्म को पृथक् कर देता है।

बन्ध के चार भेद–१ प्रकृति बन्ध २ स्थिति बन्ध ३ अनुभाग बन्ध और ४ प्रदेश बन्ध।

१ प्रकृति बन्ध–जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म-पुद्गलो मे भिन्न-भिन्न स्वभावो (शक्तियो) का उत्पन्न होना 'प्रकृति वन्ध' कहलाता है।

२ स्थिति वन्ध–जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म-पुद्गलो मे अपने स्वभाव का त्याग नही करते हुए जीव के साथ लगे रहने की काल-मर्यादा को 'स्थिति वन्ध' कहते है।

३ अनुभाग वन्ध–इसे 'अनुभव बन्ध' और 'रस वन्ध' भी कहते हैं। जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए पुद्गलो मे तरतम भाव (फल देने की न्यूनाधिक शक्ति) होना 'अनुभाग वन्ध' कहलाता है।

४ प्रदेश वन्ध–जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म-स्कन्धो का सम्वन्ध होना 'प्रदेश वन्ध' कहलाता है।

चार प्रकार के वन्ध का स्वरूप लड्डू के दृष्टान्त से वतलाया जाता है। जैसे–१ कोई लड्डू वहुत प्रकार के द्रव्यो के संयोग से उत्पन्न हुआ। वह वात-पित्त और कफ को जिस स्वरूप से नष्ट करे, उसे 'प्रकृति (स्वरूप) वन्ध' कहते हैं।

२ वही लड्डू पक्ष, मास, दो मास आदि तक उसी स्वरूप मे रहे, उसे 'स्थिति-बन्ध' कहते हैं। ३ वही लड्डू तीखे, कडवे, कषैले, खट्टे और मीठे रसयुक्त हो उसे 'रस-बन्ध' कहते हैं। ४ वही लड्डू थोडा परिमाण (वजन) का बन्धा हुआ—छोटा होता है और अधिक परिमाण का बन्धा हुआ—वडा होता है, उसे 'प्रदेश-बन्ध' कहते है।

प्रकृति-बन्ध और प्रदेश-बन्ध, योग से होता है, तथा स्थिति-बन्ध और अनुभाग-बन्ध कषाय से होता है।

९ मोक्ष तत्व—

मोक्ष—आत्मा का कर्म रूपी बन्धन से सर्वथा छूट जाना तथा सम्पूर्ण आत्मा के प्रदेशो से सभी कर्मों का क्षय होना 'मोक्ष'+ कहलाता है।

मोक्ष-गति चार कारणो से प्राप्त होती है-१ सम्यग्ज्ञान २ सम्यग्दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र और ४ सम्यक् तप।

पन्द्रहवे बोले आत्मा आठ†—१ द्रव्य आत्मा

+ आत्मा अमूर्त होने से इन्द्रियो द्वारा जानी नहीं जा सकती और अमूर्त होने से ही वह नित्य है। आत्मा में रहे हुए मिथ्यात्व अज्ञान आदि दोषो से कर्म-बन्ध होता है और यही ससार-परिभ्रमण का कारण कहा जाता है।

† द्रव्य आत्मा, दर्शन आत्मा और उपयोग आत्मा सभी जीवो के होती है। कषाय आत्मा, सकषायी जीवो के, योग-आत्मा सयोगी जीवों के ज्ञान-आत्मा समदृष्टि जीवो के, चारित्र आत्मा सर्व-विरत मुनिराजो के और वीर्य-आत्मा अयोगी-केवली सहित सभी ससारी जीवो के होती है।

(भ० श० १२ उ० ४)

२ कषाय आत्मा ३ योग आत्मा ४ उपयोग आत्मा ५ ज्ञान आत्मा ६ दर्शन आत्मा ७ चारित्र आत्मा और ८ वीर्य आत्मा।

जो ज्ञानादि पर्यायो मे निरन्तर गमन करे, उसे 'आत्मा' कहते हैं। जैसे—आत्मा तो वृक्ष रूप है और उसके उपरोक्त ८ भेद शाखा रूप है।

सोलहवें बोले दण्डक चोबीस—

१ सात नारकी का एक दण्डक सात। नारकी के नाम—-घम्मा, वंसा, सीला, अंजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई। इनके गोत्र—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम.प्रभा और तमतमःप्रभा।

१० दस भवनपतियों के दस दण्डक। उनके नाम—१ असुरकुमार २ नागकुमार ३ सुवर्णकुमार ४ विद्युतकुमार ५ अग्निकुमार ६ द्वीपकुमार ७ उदधिकुमार ८ दिशाकुमार ९ पवनकुमार और १० स्तनितकुमार।

५ पाँच स्थावरों के पाँच दण्डक। इनके नाम—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय।

३ तीन विकलेन्द्रियों के तीन दण्डक। इनके नाम—बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय।

१ तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का एक दण्डक।

१ मनुष्य का एक दण्डक ।

१ वाणव्यन्तर देवों का एक दण्डक ।

१ ज्योतिषी देवों का एक दण्डक ।

१ वैमानिक देवों का एक दण्डक ।

ये कुल २४ दण्डक हुए ।

दण्डक—स्वकृत कर्मों के फल भोगने के स्थान को दण्डक कहते हैं । जीव अपने कर्मों से जहां दण्डित होता है, उसे दण्डक कहते हैं । इसी अपेक्षा से उपरोक्त २४ भेद कहे हैं ।

सत्रहवें बोले लेश्या छः—१ कृष्ण लेश्या २ नील लेश्या ३ कापोत लेश्या ४ तेजो लेश्या ५ पद्म लेश्या और ६ शुक्ल लेश्या ।

लेश्या—जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है, जो योगों की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है, तथा मन के शुभाशुभ भावों को 'लेश्या' कहते हैं ।

(१) कृष्ण लेश्या का लक्षण—पांच आस्रवों में प्रवृत्ति करने वाला, तीन गुप्तियों से अगुप्त, छः काया की विराधना करने वाला, तीव्र भावों से आरम्भादि करने वाला, निर्दयता के परिणाम वाला, नृशंस—क्रूर, इन्द्रियों को वश में नहीं करने वाला, दुष्ट भावों से युक्त जीव, कृष्ण लेश्या के परिणाम वाला होता है ।

(२) नील लेश्या का लक्षण—ईर्षालु कदाग्रही, तपस्या

नही करने वाला, अविद्या वाला, मायावी, निर्लज्ज विषयो मे गृद्ध, द्वेषी, मूर्ख, प्रमादी, रसलोलुप, विषयो की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील, आरम्भ से निवृत्त नही होने वाला और क्षुद्र तुच्छ तथा साहसिक, बिना विचारे काम करने वाला। इस प्रकार के भावो से युक्त जीव, नील लेश्या के परिणाम वाला होता है।

(३) कापोत-लेश्या का लक्षण–वक्र वचन बोलने वाला, वक्र आचरण वाला, मायावी–मन की अपेक्षा वक्र, सरलता से रहित, अपने दोषो को छिपाने वाला, छलपूर्वक वर्ताव करने वाला, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, मर्म-भेदी वचन बोलने वाला, और मत्सरी, दूसरो की उन्नति को सहन नही करने वाला इत्यादि भावो से युक्त जीव, कापोत लेश्या के परिणाम वाला होता है।

(४) तेजो लेश्या का लक्षण–नम्र वृत्ति वाला (अहकार रहित) चपलता रहित, माया रहित, कुतूहल आदि नही करने वाला, परम विनय-भक्ति करने वाला, इन्द्रियो का दमन करने वाला स्वाध्यायादि मे रत रहने वाला, उपधानादि तप करने वाला, धर्म मे दृढ रहने वाला, पाप से डरने वाला, सभी प्राणियो का हित चाहने वाला, इत्यादि शुभ भावो से युक्त जीव, तेजो लेश्या वाला होता है।

(५) पद्म लेश्या का लक्षण–अल्प क्रोध वाला, अल्प मान वाला, अल्प माया वाला और अल्प लोभ वाला, शान्त चित्त वाला, अपनी आत्मा का दमन करने वाला, स्वाध्यायादि करने वाला, उपधानादि तप करने वाला, परिमित बोलने वाला

उपशान्त और जितेन्द्रिय। इन गुणो मे युक्त जीव पद्मलेश्या के परिणाम वाला होता है।

(६) शुक्ल-लेश्या का लक्षण—जो पुरुष आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड कर, धर्मध्यान और शुक्लध्यान को ध्याता है, शान्त चित्त वाला, अपनी आत्मा को दमन करने वाला, पाँच समितियो मे युक्त, तीन गुप्तियो से गुप्त, अल्प रागी अथवा वीतरागी, उपशात और जितेन्द्रिय। इन उत्तम भावो से युक्त जीव, विशिष्ट शुक्ल लेश्या के परिणाम वाला होता है, अर्थात् ये सभी लक्षण विशिष्ट शुक्ल लेश्या वाले पुरुष मे पाये जाते हैं।

आत्मा के जो विचार हैं, उनको 'भाव-लेश्या' कहते हैं और जिन विचारो से आकर्षित हो कर लेश्या के पुद्गल आत्मा को लगते हैं, उन पुद्गलो को 'द्रव्य-लेश्या' कहते है। लेश्याओ के नाम, द्रव्य-लेश्याओ के आधार पर ही रखे गये हैं।

छ लेश्याओ का स्वरूप समझाने के लिये दो दृष्टात दिये गये हैं। वे इस प्रकार है—

छ पुरुषो ने एक जामुन का वृक्ष देखा। वृक्ष पके हुए फलो से लदा था। शाखाएँ नीचे की ओर झुकी हुई थी। उन्हें देख कर उन्हे फल खाने की इच्छा हुई। वे सोचने लगे कि—किस प्रकार इनके फल खाये जाएँ? एक ने कहा—वृक्ष पर चढने मे गिरने का डर है, इसलिये इसे जड से काट कर गिरा दें और सुख से बैठ कर फल खावें। यह सुन कर दूसरे ने कहा—

वृक्ष को जड से काट कर गिराने से क्या लाभ ? केवल वडी-वडी डालियाँ ही क्यो नही काट ली जायँ। इस पर तीसरा वोला—वडी-वडी डालियाँ नही काट कर, छोटी-छोटी टहनियाँ ही क्यो न काट ली जायँ, क्यो कि फल तो छोटी टहनियो मे ही लगे हुए है। चौथे को यह वात पसन्द नही आई। उसने कहा—केवल फलो के गुच्छे ही तोडे जायँ। हमे तो फलो से ही प्रयोजन है। पाँचवे ने कहा—गुच्छे भी तोडने की जरूरत नही केवल पके हुए फल ही नीचे गिरा दिये जायँ। यह सुन कर छठे ने कहा—जमीन पर काफी फल गिरे हुए है, उन्हे ही खाले। अपना मतलव तो उन्ही से सिद्ध हो जायगा।

दूसरा दृष्टात इस प्रकार है—छ क्रूरकर्मी डाकू किसी ग्राम मे डाका डालने के लिए रवाना हुए। वे रास्ते मे विचार करने लगे। एक ने कहा—जो मनुष्य या पशु दिखाई दे, उन सभी को मार देना चाहिये। यह सुन कर दूसरे ने कहा—पशुओ ने हमारा कुछ नही विगाड़ा है। हमारा तो मनुष्यो के साथ विरोध है। इसलिए मनुष्यो को ही मारना चाहिए। तीसरे ने कहा—स्त्री-हत्या महापाप है। इसलिये स्त्रियो को नही मारना चाहिए। यह सुन कर चौथे ने कहा—शस्त्र-रहित मनुष्यो पर वार करना उचित नही, इसलिये जिन पुरुषो के हाथ मे शस्त्र हो, उन्ही को मारना चाहिये। यह सुन कर पाँचवे डाकू ने कहा—शस्त्र लिए पुरुप भी यदि डर के मारे भागते हो, तो उन्हे नही मारना चाहिए। जो शस्त्र ले कर लडने के लिए आवे, उन्ही को मारना चाहिए। अन्त मे छठे

चोर ने कहा—हम लोग चोर हैं। हमे तो धन की जरूरत है। इसलिए जिस प्रकार धन मिले, वही उपाय करना चाहिए। एक तो हम दूसरे लोगो का धन चुरावे और ऊपर से उन्हे मारे, यह ठीक नही है। चोरी तो वैसे ही पाप है, विशेष मे हत्या का महा-पाप क्यो किया जाय ?

दोनो दृष्टातो के पुरुषो मे पहले से दूसरे, दूसरे से तीसरे इस प्रकार आगे-आगे के पुरुषो के परिणाम क्रमश अधिकाधिक शुभ हैं। इन भावो मे उत्तरोत्तर सक्लेश की कमी और मृदुता की अधिकता है। छहो पुरुषो मे पहले पुरुष के परिणाम को कृष्ण-लेश्या यावत् छठे के परिणाम को शुक्ललेश्या समझना चाहिए।

छहो लेश्याओ मे कृष्ण, नील और कापोत-लेश्या, पाप का कारण होने से अधर्म-लेश्या हैं। इनसे जीव दुर्गति मे उत्पन्न होता है। तेजो-लेश्या, पद्म-लेश्या और शुक्ल-लेश्या, ये तीन धर्म लेश्या हैं। इनसे जीव सुगति मे उत्पन्न होता है।

जिस लेश्या मे जीव मरता है, अर्थात् मरते समय जो लेश्या होती है, उसी लेश्या को ले कर जीव परभव मे उत्पन्न होता है। लेश्या के प्रथम और चरम समय मे जीव परभव मे नही जाता, किन्तु अन्तर्मुहूर्त बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर ही जीव परभव मे जाता है। मरते समय लेश्या का अन्तर्मुहूर्त बाकी रहता है। इसलिए परभव मे भी जीव उसी लेश्या से युक्त उत्पन्न होता है।

अठारहवें बोले दृष्टि तीन—१ सम्यग्दृष्टि २ मिथ्या-

दृष्टि और ३ सम्यक्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि)।

दृष्टि–अन्त करण की प्रवृत्ति अर्थात् मन के अभिप्राय को दृष्टि कहते हैं।

उन्नीसवें बोले ध्यान चार—१ आर्त्तध्यान २ रौद्रध्यान ३ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान।

ध्यान–एक वस्तु पर मन को स्थिर करना 'ध्यान' कहलाता है। वह ध्यान अन्तर्मुहूर्त मात्र रहता है। ध्यान के चार प्रकार हैं–

(१) आर्त्तध्यान–अनिष्ट वस्तु के वियोग और इष्ट वस्तु के सयोग का चिन्तन करना। (२) रौद्रध्यान–हिंसादि दुष्ट आचरण का चिन्तन करना। (३) धर्मध्यान–निर्जरा के लिए आज्ञा, अपाय आदि तथा ससार की असारता का चिन्तन करना (४) शुक्लध्यान–ससार, पुद्गल, कर्म और जीवादि के स्वभाव का विशुद्ध रीति से चिन्तन करना।

बीसवें बोले षट् द्रव्यों के ३० भेद। छः द्रव्यों के नाम—१ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ३ आकाशास्तिकाय ४ काल द्रव्य ५ जीवास्तिकाय और ६ पुद्गलास्तिकाय।

द्रव्य–जिसमे गुण और पर्याय उत्पन्न होते हैं, ठहरते हैं और नष्ट होते हैं, उसे 'द्रव्य' कहते हैं। 'अस्ति' शब्द का अर्थ प्रदेश है और 'काय' का अर्थ राशि है। प्रदेशो की राशि वाले द्रव्यो को 'अस्तिकाय' कहते हैं।

धर्मास्तिकाय को पाँच बोलो से पहिचाने ।

१ द्रव्य से–एक द्रव्य, २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण ३ काल से–आदि-अन्त रहित, ४ भाव से–वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही, स्पर्श नही, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी और असख्यात प्रदेशी है। ५ गुण से–चलन गुण, पानी मे मछली का दृष्टान्त। जैसे पानी के आधार (सहायता) से मछली चलती है, इसी प्रकार जीव और पुद्गल–दोनो धर्मास्तिकाय के आधार से चलते हैं।

अधर्मास्तिकाय को पाँच बोलो से पहिचाने ।

१ द्रव्य से–एक द्रव्य, २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण, ३ काल से–आदि-अन्त रहित, ४ भाव से–वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही, स्पर्श नही, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी और असख्यात प्रदेशी है। ५ गुण से–स्थिर गुण। थके हुए पथिक को छाया का दृष्टान्त। जैसे थका हुआ पथिक, वृक्ष की छाया में बैठ कर विश्राम लेता है, उसी प्रकार जीव और पुद्गल के ठहरने मे अधर्मास्तिकाय आधारभूत है।

आकाशास्तिकाय को पाँच बोलो से पहिचाने ।

१ द्रव्य से–एक द्रव्य २ क्षेत्र से-लोकालोक प्रमाण ३ काल से–आदि-अन्त रहित ४ भाव से–वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही, स्पर्श नही, अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्वव्यापी और अनन्त प्रदेशी है और ५ गुण से–अवकाश–पोलार–स्थान देने का गुण। आकाश मे त्रिकास, भीत मे खूंटी और दूध मे पताशा का दृष्टान्त।

काल द्रव्य को पाँच वोलो से पहिचाने ।

१ द्रव्य से–एक काल अनन्त द्रव्यो पर प्रवर्ते २ क्षेत्र से–ढाई द्वीप प्रमाण ३ काल से–आदि-अन्तरहित ४ भाव से–वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही, स्पर्श नही, अरूपी, अजीव, शाश्वत और अप्रदेशी है और ५ गुण से–वर्तन गुण । नये को पुराना करे, पुराने को नष्ट करे । कपडे को कैंची का दृष्टान्त ।

जीवास्तिकाय को पाँच बोलो से पहिचाने ।

१ द्रव्य से–अनन्त जीव-द्रव्य २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण ३ काल से–आदि-अन्त रहित ४ भाव से–वर्ण नही, गन्ध नही, रस नही, स्पर्श नही, अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकव्यापी और अनन्त प्रदेशी है । एक जीव की अपेक्षा असख्यात प्रदेशी है और ५ गुण से–उपयोग गुण । चन्द्रमा की कला का दृष्टाँत ।

पुद्‌गलास्तिकाय को पाँच बोलो से पहिचाने ।

१ द्रव्य से–अनन्त द्रव्य २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण ३ काल से–आदि-अन्त रहित ४ भाव से–वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श है, रूपी, अजीव, शाश्वत और अनन्त प्रदेशी, है । ५ गुण से–पूरण, गलन, सड़न, विध्वंसन गुण । बादल का दृष्टान्त–बादल के समान मिलते और बिखरते हैं ।

इक्कीसवें बोले राशि दो–जीव-राशि और अजीव-राशि । जीव-राशि के ५६३ और अजीव-राशि के ५६० भेद होते हैं ।

राशि–वस्तु के समूह को 'राशि' कहते हैं।

संमारी जीवो के ५६३ भेदो का विवरण पृ ११० मे वताया गया है।

अजीव राशि के ५६० भेद। इनमे अरूपी अजीव के ३० और रूपी अजीव के ५३०। कुल ५६० भेद हैं।

अरूपी अजीव के ३० भेद इस प्रकार हैं–धर्मास्तिकाय के तीन भेद–स्कन्ध (सम्पूर्ण वस्तु) देश (दो तीन आदि भाग), प्रदेश (जिसका दूसरा भाग नही हो सके)। अधर्मास्तिकाय के तीन भेद–स्कन्ध, देश और प्रदेश। आकाशास्तिकाय के तीन भेद–स्कन्ध, देश और प्रदेश। कालद्रव्य का एक भेद = १०।

धर्मास्तिकाय के पाँच भेद–१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव और ५ गुण। अधर्मास्तिकाय के पाँच भेद–१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव और ५ गुण। आकाशास्तिकाय के पाँच भेद–१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव और ५ गुण। काल द्रव्य के पाँच भेद–१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव और ५ गुण। ये २० और ऊपर के १०। कुल ३० भेद हुए।

रूपी अजीव के ५३० भेद इस प्रकार है–

वर्ण पांच–काला, नीला, लाल, पीला और श्वेत। प्रत्येक के २ गध ५ रस ८ स्पर्श और ५ सस्थान। इन २० भेदो से गुणा करने पर २०×५ = १०० भेद हुए।

गंध दो–सुगध और दुर्गंध। प्रत्येक के ५ वर्ण ५ रस ८ स्पर्श और ५ सस्थान। इन २३ भेदो से गुणा करने पर २३×२ = ४६ भेद हुए।

रस पाँच–तीखा, कडवा, कषायला, खट्टा और मीठा। प्रत्येक के ५ वर्ण २ गध ८ स्पर्श और ५ संठाण। इन २० भेदो से गुणा करने पर २०×५ = १०० भेद हुए।

स्पर्श आठ–कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष। प्रत्येक के ५ वर्ण २ गध, ५ रस ६ स्पर्श† और ५ सठान इन २३ भेदो से गुणा करने पर २३×८ = १८४ भेद हुए।

संठान पांच–परिमडल, वट्ट, तस, चउरंस और आयत। प्रत्येक के ५ वर्ण २ गध ५ रस और ८ स्पर्श। इन २० भेदो से गुणा करने पर २०×५ = १०० भेद हुए।

इस प्रकार रूपी अजीव के ५३० भेद हुए।

बाईसवें बोले श्रावकजी के बारह व्रत।

व्रत–अमर्यादित एव अनियन्त्रित अशुभ प्रवृत्ति को मर्यादित एवं नियन्त्रित रखना 'व्रत' कहलाता है।

१ पहले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत में श्रावकजी निरपराधी त्रस जीव को संकल्पपूर्वक मारे नहीं, मरवावे नहीं, मन वचन और काया से।

२ दूसरे स्थूल मृषावाद विरमण व्रत में श्रावकजी स्थूल (मोटा) झूठ बोले नहीं, बोलावे नहीं, मन वचन और काया से।

३ तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत में श्रावकजी स्थूल चोरी करे नहीं, करावे नहीं, मन वचन

† ८ में एक स्वय और एक विरोधी स्पर्श को छोड कर।

और काया से ।

४ चौथे स्थूल मैथुन विरमण व्रत में श्रावकजी पर-स्त्री सेवन का त्याग करे और अपनी स्त्री की मर्यादा करे।

५ पाँचवे स्थूल परिग्रह-परिमाण व्रत में श्रावकजी ९ प्रकार के परिग्रह की मर्यादा करे ।

६ छठे दिशा-परिमाण व्रत में श्रावकजी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँची और नीची, इन छह दिशा में गमन करने की मर्यादा करे ।

७ सातवें उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत में श्रावकजी छब्बीस बोल की मर्यादा करे और पन्द्रह कर्मादान का त्याग करे ।

८ आठवे अनर्थ-दण्ड विरमण व्रत में श्रावकजी चार प्रकार के अनर्थ-दण्ड का त्याग करे।

९ नौवे सामायिक व्रत में श्रावकजी प्रतिदिन शुद्ध सामायिक करे (सामायिक का नियम रखे) ।

१० दसवे देशावकासिक व्रत में श्रावकजी संवर करे, चौदह नियम धारण करे, तीन मनोरथ का चिंतन करे ।

११ ग्यारहवे पौषध व्रत में श्रावकजी प्रतिपूर्ण

पौषध करे ※।

१२ बारहवें अतिथि-संविभाग व्रत में श्रमण-निग्रंथों को प्रतिदिन चौदह प्रकार की वस्तु में से जो निर्दोष हो उन्हे देने की भावना रखे तथा भोजन के समय विशेष भावना भावे।

तेइसवे बोले साधुजी के पॉच महाव्रत।

महाव्रत—सर्व विरति-सम्पूर्ण रीति से हिंसा, असत्य, चोरी कुशील और परिग्रह का त्याग करना 'महाव्रत' कहलाता है।

१ पहले महाव्रत में साधुजी महाराज, सर्वथा प्रकार से छः काय जीव की हिंसा करे नही, करावे नही और करते हुए को भला जाने नहीं। मन वचन और काया से (तीन करण तीन योग से)।

२ दूसरे महाव्रत में साधुजी महाराज, सर्वथा प्रकार से झूठ बोले नही, बोलावे नही और बोलते हुए को भला जाने नहीं। मन वचन और काया से।

३ तीसरे महाव्रत में साधुजी महाराज, सर्वथा प्रकार से चोरी करे नहीं (बिना दी वस्तु लेवे नहीं) चोरी करावे नहीं, करते हुए को भला जाने नही। मन वचन और काया से।

※ देश-पौषध और दया को भी इस व्रत मे सम्मिलित किया जाता है।

४ चौथे महाव्रत में साधुजी महाराज, सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवे नहीं, सेवावे नहीं और सेवते हुए को भला जाने नहीं। मन वचन और काया से।

५ पांचवे महाव्रत में साधुजी महाराज, सर्वथा प्रकार से परिग्रह रखे नहीं, रखावे नहीं और रखते हुए को भला जाने नहीं। मन वचन और काया से।

चोबीसवें बोले ४९ भग का जानना।

भग—विभाग रूप रचना को 'भग' कहते हैं।

नौ अक—११, १२, १३। २१, २२, २३। ३१, ३२, ३३। इनमे प्रथम अक करण और दूसरा अक योग रूप है।

अक ग्यारह के भंग नौ। एक करण और एक योग से। यथा—१ करूँ नहीं मनसा, २ करूँ नहीं वयसा, ३ करूँ नहीं कायसा, ४ कराऊँ नहीं मनसा, ५ कराऊँ नहीं वयसा, ६ कराऊँ नहीं कायसा, ७ अनुमोदूं नहीं मनसा, ८ अनुमोदूं नहीं वयसा, ९ अनुमोदूं नहीं कायसा।

अंक बारह के भंग नौ। एक करण और दो योग से। जैसे—१ करूँ नहीं—मनसा, वयसा, २ करूँ नहीं—मनसा, कायसा, ३ करूँ नहीं—वयसा, कायसा. ४ कराऊँ नहीं—मनसा, वयसा, ५ कराऊँ नहीं—मनसा, कायसा, ६ कराऊँ नहीं—वयसा, कायसा, ७

अनुमोदूँ नहीं—मनसा, वयसा, ८ अनुमोदूँ नहीं—मनसा, कायसा ९ अनुमोदूँ नही—वयसा, कायसा।

अंक तेरह के भंग तीन। एक करण और तीन योग से—१ करूँ नहीं—मनसा, वयसा, कायसा २ कराऊँ नहीं—मनसा, वयसा, कायसा, ३ अनुमोदूँ नहीं—मनसा, वयसा, कायसा।

अंक इक्कीस के भंग नौ। दो करण एक योग से—१ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं—मनसा, २ करूँ नहीं कराऊँ नहीं—वयसा, ३ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं-कायसा, ४ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नही—मनसा ५ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं—वयसा, ६ करूँ नही, अनुमोदूँ नहीं-कायसा, ७ कराऊँ नहीं अनुमोदूँ नहीं-मनसा ८ कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं—वयसा, ९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नहीं—कायसा।

अंक बाईस के भंग नौ। दो करण और दो योग से -१ करूँ नहीं, कराऊँ नही-मनसा, वयसा, २ करूँ नहीं, कराऊँ नही-मनसा, कायसा, ३ करूँ नहीं कराऊँ नहीं-वयसा, कायसा, ४ करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं-मनसा, वयसा, ५ करूँ नहीं, अनुमोदूं नहीं-मनसा, कायसा, करूँ नहीं, अनुमोदूं नहीं—वयसा, कायसा, ७ कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं-मनसा, वयसा, ८ कराऊँ

नहीं, अनुमोदूं नहीं–मनसा, कायसा, ९ कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं––वयसा, कायसा।

अंक तेईस के भंग तीन। दो करण तीन योग से–१ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं—मनसा, वयसा, कायसा, करूँ नही, अनुमोदूं नही–मनसा, वयसा, कायसा, ३ कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं–मनसा, वयसा, कायसा।

अक इकत्तीस के भंग तीन। तीन करण एक योग से कहना–१ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं–मनसा, २ करूं नहीं, कराऊँ नहीं अनुमोदूं नहीं,--वयसा, ३ करूं नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं—कायसा।

अंक बत्तीस के भंग तीन। तीन करण दो योग से कहना—१ करूं नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं–मनसा, वयसा, २ करूं नही, कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं–मनसा, कायसा, ३ करूं नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं—वयसा, कायसा।

अक तेतीस का भंग एक। तीन करण तीन योग से कहना—१ करू नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूं नहीं–मनसा, वयसा, कायसा।

पच्चीसवे बोले चारित्र पाँच।

१ सामायिक चारित्र २ छेदोपस्थापनीय चारित्र ३ परिहारविशुद्धि चारित्र, ४ सूक्ष्मसंपराय चारित्र

और ५ यथाख्यात चारित्र ।

चारित्र—चारित्र-मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से उत्पन्न हुए सर्व-विरत परिणाम—सयम-अनुष्ठान । तथा जो आठ कर्मों को चूरे (नाश करे) उसे 'चारित्र' कहते हैं ।

छह भावों का थोकड़ा

छह भाव—१ औदयिक भाव, २ औपशमिक भाव, ३ क्षायिक भाव, ४ क्षयोपशम भाव, ५ पारिणामिक भाव और ६ सान्निपातिक भाव ।

(१) **औदयिक भाव**—इसके दो भेद—उदय और उदय-निष्पन्न । उदय आठो कर्मों का होता है और उदय-निष्पन्न के २ भेद हैं—१ जीव उदय-निष्पन्न और २ अजीव-उदय निष्पन्न।

जीव उदय-निष्पन्न के ३३ भेद इस प्रकार हैं,—चार गति—१ नरक, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य और ४ देव । छह काय—१ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेऊकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय और ६ त्रसकाय । चार कषाय—१ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ । छह लेश्या—१ कृष्ण, २ नील, ३ कापोत, ४ तेजो, ५ पद्म और ६ शुक्ल । तीन वेद—१ स्त्रीवेद २ पुरुषवेद और ३ नपुसकवेद । ये २३ भेद हुए । २४ मिथ्यादृष्टि, २५ असज्ञीपन, २६ अज्ञान, २७ आहारक, २८ अव्रत, २९ सॉसारिक, ३० छद्मस्थ, ३१ सयोगी, ३२ अकेवली और ३३ असिद्धत्व । कुल ३३ ।

अजीव उदय-निष्पन्न के ३० भेद–पाँच शरीर–१ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तेजस् और ५ कार्मण। इन ५ शरीर मे परिणमे हुए पुद्गल, ये १०। और इनके वर्ण ५, गध २, रस ५, स्पर्श ८। कुल ३०।

(२) **औपशमिक भाव**–औपशमिक भाव के २ भेद–१ उपशम और २ उपशम-निष्पन्न। उपशम मोहनीय कर्म का होता है। उपशम-निष्पन्न के ११ भेद हैं,–१ उपशम क्रोध, ३ उ० मान, ३ उ० माया, ४ उ० लोभ, ५ उ० राग, ६ उ० द्वेष, ७ उ० दर्शन-मोहनीय, ८ उ० चारित्र-मोहनीय, ९ उ० दर्शन-लब्धि, १० उ० चारित्र-लब्धि और ११ उपशान्त कषाय छद्मस्थ वीतराग।

(३) **क्षायिक भाव**–क्षायिक भाव के दो भेद–१ क्षायिक और २ क्षायिक-निष्पन्न। आठ कर्मों का क्षय होना क्षायिक भाव है। क्षायिक-निष्पन्न के ३१ भेद–ज्ञानावरणीय की ५ प्रकृति क्षय होने केवलज्ञान की प्राप्ति। दर्शनावरणीय की ९ प्रकृति क्षय होने से केवलदर्शन की प्राप्ति। वेदनीय की २ प्रकृति क्षय होने अनन्त अव्याबाध सुख की प्राप्ति। मोहनीय की २ प्रकृति क्षय होने से क्षायिक समकित की प्राप्ति। आयुष्य की ४ प्रकृति क्षय होने से अमरत्व गुण की प्राप्ति। नाम कर्म की २ प्रकृति क्षय होने से अमूर्त्ति गुण की प्राप्ति। गोत्र कर्म की २ प्रकृति क्षय होने से अगुरुलघु गुण की प्राप्ति। अन्तराय कर्म की ५ प्रकृति क्षय होने से अनन्तराय गुण की प्राप्ति। ५।९।२।२।४।२।२।५ एव ३१।

(४) **क्षयोपशम भाव**–क्षयोपशम भाव के दो भेद–१ क्षयोपशम और २ क्षयोपशम-निष्पन्न। क्षयोपशम चार घाती कर्मों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय) का होता है। क्षयोपशम-निष्पन्न के ५० भेद–ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने से २६ बोल की प्राप्ति होती है–४ ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मन पर्याय), ३ अज्ञान (मति, श्रुत और विभग) और आगम का पठन-पाठन, आचारागादि ११ अग, दृष्टिवाद, ६ से १४ पूर्व। कुल २६। दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ८ बोल की प्राप्ति–श्रोतेन्द्रियादि ५ इन्द्रिय, चक्षु-दर्शन, अचक्षु-दर्शन और अवधि-दर्शन एव ८। मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से ८ बोल की प्राप्ति–चार चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्ध और सूक्ष्मसपराय) १ देश चारित्र, ३ दृष्टि, एव ८। अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से ८ बोल की प्राप्ति–५ लब्धि (दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य), बाल-वीर्य लब्धि, पंडित-वीर्य लब्धि और बाल-पडित वीर्य लब्धि, एव ८। कुल ५०।

(५) **पारिणामिक भाव**–पारिणामिक भाव के दो भेद–१ सादि पारिणामिक और २ अनादि पारिणामिक। अनादि पारिणामिक के १० भेद–धर्मास्ति आदि ६ द्रव्य, ७ लोक, ८ अलोक, ९ भव्य और १० अभव्य–ये १०। सादि पारिणामिक के अनेक भेद–पुराना गुड, पुरानी मदिरा, पुराना चावल, घृत आदि, पुराना ग्राम, नगर, पुर, पाटन, यावत् राजधानी इत्यादि। जिस वस्तु की आदि है कि अमुक दिन से इस रूप

मे बनी है, उसका अत भी है। उसकी अवस्था मे विविध परिणमन होते हैं।

(६) **सान्निपातिक भाव**–उपरोक्त पाँच भावो के संयोग से उत्पन्न भाव। इसके २६ भेद हैं। यथा–

त्रिक सयोगी भागे १०

१ उदय–उपशम	६ उपशम–क्षयोपशम
२ उदय–क्षायिक	७ उपशम–पारिणामिक
३ उदय–क्षयोपशम	८ क्षायिक–क्षयोपशम
४ उदय–पारिणामिक	९ क्षायिक–पारिणामिक
५ उपशम–क्षायिक	१० क्षयोपशम–पारिणामिक

त्रिक सयोगी भागा १०

१ उदय	उपशम	क्षायिक
२ "	"	क्षयोपशम
३ "	"	पारिणामिक
४ "	क्षायिक	क्षयोपशम
५ "	"	पारिणामिक
६ "	क्षयोपशम	"
७ उपशम	क्षायिक	क्षयोपशम
८ "	"	पारिणामिक
९ "	क्षयोपशम	"
१० क्षायिक	"	"

चतुष्क सयोगी भागा ५

१ उदय	उपशम	क्षायिक	क्षयोपशम

२ उदय	उपशम	क्षायिक	पारिणामिक
३ उदय	उपशम	क्षयोपशम	पारिणामिक
४ "	क्षायिक	"	"
५ उपशम	"	"	"

पच सयोगी एक भग

१ उदय, उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम और पारिणामिक। उपरोक्त २६ भगो मे से २० भग तो शून्य हैं, शेष ६ भागो के स्वामी मिल सकते है। जैसे,—

१ द्विक सयोगी ९ वाँ भग—क्षायिक और पारिणामिक। यह भंग सिद्धो मे है। पारिणामिक भाव जीव का और क्षायिक ज्ञान-दर्शनादि।

२ त्रिक सयोगी ५ वाँ भग—उदय, क्षायिक और पारिणामिक। १३ वे और १४ वे गुणस्थान मे—१ उदय मनुष्य गति का, २ क्षायिक ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि और ४ पारिणामिक जीव भाव।

३ त्रिक सयोगी छठा भंग—१ उदय, २ क्षयोपशम और ३ पारिणामिक। चारो गति आदि मे उदय गति का, क्षयोपशम इन्द्रियादि का और ३ पारिणामिक जीव भाव।

४ चतुष्क सयोगी तीसरा भग—१ उदय, २ उपशम, ३ क्षयोपशम और ४ पारिणामिक। उदय गति आदि का, उपशम मिथ्यात्व का, क्षयोपशम इन्द्रियादि का, पारिणामिक जीव भाव। चारो गति मे तथा ग्यारहवे गुणस्थान मे।

५ चतुष्क सयोगी चोथा भग—१ उदय, २ क्षायिक,

३ क्षयोपशम और ४ पारिणामिक। उदय गति का, क्षायिक समकित, क्षयोपशम इन्द्रियो का और पारिणामिक जीव। चारो गति मे तथा १२ वे गुणस्थान मे।

६ पच सयोगी १ भग–क्षायिक समकित वाले उपशम श्रेणी चढते हुए मे पावे। उदय गति का, उपशम चारित्र मोह-का, क्षायिक समकित, क्षयोपशम इन्द्रियो का और पारिणामिक जीव।

चौदह पूर्व

तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थंकर भगवान् जिस अर्थ का गणधरो को सर्व प्रथम उपदेश देते हैं, अथवा गणधर महा-राज जिस अर्थ को सूत्र रूप मे प्रथम गूथते हैं, उन्हें 'पूर्व' कहा जाता है। पूर्व चौदह हैं। यथा–

१ **उत्पाद पूर्व**–इस पूर्व मे सभी द्रव्य और सभी पर्यायो की उत्पत्ति का वर्णन है।

२ **अग्रायणीय पूर्व**–इसमे सभी द्रव्य, सभी पर्याय और सभी जीवो के परिमाण का वर्णन है।

३ **वीर्यप्रवाद पूर्ण**–इसमे कर्म सहित और बिना कर्म वाले सिद्ध जीवो तथा अजीवो के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है।

४ **अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व**–ससार मे धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएँ विद्यमान है तथा आकाश-कुसुम आदि जो अविद्यमान है, उन सभी का वर्णन है।

५ **ज्ञानप्रवाद पूर्व**–इसमे मतिज्ञान आदि ज्ञान के पांच भेदो का विस्तृत वर्णन है।

६ **सत्यप्रवाद पूर्व**-इसमे सत्य रूप संयम या सत्य वचन का विस्तृत वर्णन है।

७ **आत्मप्रवाद पूर्व**–इसमें अनेक नय तथा मतो की अपेक्षा से आत्मा का प्रतिपादन किया गया है।

८ **कर्मप्रवाद पूर्व**-इसमे आठ कर्मो की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदो का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

९ **प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व**–इसमे प्रत्याख्यानो का भेद प्रभेद पूर्वक वर्णन है।

१० **विद्यानुप्रवाद पूर्व**–इस पूर्व मे विविध प्रकार की विद्या तथा सिद्धियो का वर्णन है।

११ **अवन्ध्य पूर्व**–इसमे ज्ञान, तप, सयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फल वाले अवन्ध्य अर्थात् निष्फल नही जाने वाले कार्यों का वर्णन है।

१२ **प्राणायुप्रवाद पूर्व**–इसमे दस प्राण और आयु आदि का भेद-प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है।

१३ **क्रियाविशाल पूर्व**–इसमे कायिकी, आधिकरणिकी आदि तथा संयम मे उपकारक क्रियाओ का वर्णन है।

१४ **लोकबिन्दुसार पूर्व**–लोक मे अर्थात् ससार मे, श्रुतज्ञान मे जो शास्त्र, बिन्दु की तरह सब से श्रेष्ठ है, वह

लोकबिंदुसार है। अथवा सर्वाक्षर सान्निपातिक लब्धि प्रदायक पूर्व।

पूर्व	पद सख्या	वत्थु	चूल वत्थु	स्याही हस्ति
१	१ करोड	१०	४	१
२	९६ लाख	१४	१२	२
३	७० लाख	८	८	४
४	६० लाख	१८	१०	८
५	१ करोड़ मे १ कम मत्तान्तर से २ करोड	१२		१६
६	१ करोड़ ६	२		३२
७	२६ करोड	१६		६४
८	१ करोड ८० लाख (१ करोड ८० हजार)	३०		१२८
९	८४ लाख	२०		२५६
१०	१ क १० लाख (१ क १० हजार)	१५		५१२
११	२६ करोड	१२		१०२४
१२	१ क ५६ लाख	१३		२०४८
१३	९ करोड	३०		४०९६
१४	१२ क ५० लाख	२५		८१९२
	कुल जोड	२२५	३४	१६३८३

योग संग्रह

मोक्ष साधना मे सहायक, दोषो को दूर करके शुद्धि करने वाले, ऐसे प्रशस्त योगो के सग्रह को 'योग सग्रह' कहते है। मन, वचन और काया की शुभ प्रवृत्ति रूप शुभ-योग के ३२ भेद समवायाग मे इस प्रकार कहे है।

१ **आलोचना**–गुरु के समक्ष शुद्ध भावो से सच्ची आलोचना करना।

२ **निरपलाप**–शिष्य या अन्य कोई अपने सामने आलोचना करे, तो वह किसी को नही कह कर अपने मे ही सीमित रखना।

३ **दृढ धर्मिता**–आपत्ति आने पर भी अपने धर्म मे दृढ रहना।

४ **निराश्रित तप**–किसी भी प्रकार की भौतिक इच्छा के बिना अथवा किसी दूसरे की सहायता की अपेक्षा के बिना तप करना।

५ **शिक्षा**–सूत्र और अर्थ ग्रहण रूप तथा प्रतिलेखनादि रूप आसेवना की शिक्षा ग्रहण करना।

६ **निष्प्रतिकर्म**–शरीर की शोभा नही करना।

७ **अज्ञात तप**–यश और सत्कार की इच्छा नही रख कर इस प्रकार तप करना कि जो बाहर किसी को मालूम नही हो सके।

८ **निर्लोभ**–वस्त्र, पात्र, अथवा स्वादिष्ट आहार आदि किसी भी वस्तु का लोभ नही करना।

९ **तितिक्षा**–सयम साधना करते हुए जो परीषह और

उपसर्ग आवे उन्हे शान्तिपूर्वक सहन करना ।

१० आर्जव–हृदय मे ऋजुता–सरलता धारण करना ।

११ शुचि–सत्य और शुद्धाचार से पवित्र रहना ।

१२ सम्यग्दृष्टि–दृष्टि की विशेष शुद्धता, सम्यक्त्व की शुद्धि ।

१३ समाधि–समाधिवन्त—शान्त और प्रसन्न रहना ।

१४ आचार–चारित्रवान् होना, निष्कपट हो कर चारित्र पालना ।

१५ विनयोपगत–मान को त्याग कर विनयशील बनना ।

१६ धैर्यवान्–अधीरता और चञ्चलता छोड़ कर धीरज धारण करना ।

१७ सवेग–संसार से अरुचि और मोक्ष के प्रति अनुराग होना–मुक्ति की अभिलाषा होना ।

१८ प्रणिधि–माया का त्याग करके नि शल्य होना, भावो को उज्ज्वल रखना ।

१९ सुविहित–उत्तम आचार का सतत पालन करते ही रहना ।

२० सवर–आश्रव के मार्गो को वन्द करके सवरवत होना।

२१ दोष निरोध–अपने दोषो को हटा कर उनके मार्ग ही वन्द कर देना, जिनमे पुन दोष प्रवेश नही हो ।

२२ सर्व काम विरक्तता–पांचो इन्द्रियो के अनुकूल विषयो से सदा विरक्त ही रहना ।

२३ मूल गुण प्रत्याख्यान–मूल गुण विषयक–हिंसादि त्याग

के प्रत्याख्यान करना और उसमे दृढ रहना ।

२४ **उत्तरगुण प्रत्याख्यान**–उत्तर गुण विषयक–तप आदि के प्रत्याख्यान करके शुद्धतापूर्वक पालन करना ।

२५ **व्युत्सर्ग**–शरीरादि द्रव्य और कषायादि भाव व्युत्सर्ग करना ।

२६ **अप्रमाद**–प्रमाद को छोड कर अप्रमत्त रहना ।

२७ **समय साधना**–काल के प्रत्येक क्षण को सार्थक करना, जिस समय जो अनुष्ठान करने का हो वही करना । समय को व्यर्थ नही खोना ।

२८ **ध्यान संवर योग**–मन वचन और काया के योगो का संवरण करके ध्यान करना ।

२९ **मारणान्तिक उदय**–मृत्यु का समय अथवा मारणान्तिक कष्ट आ जाने पर भी दृढतापूर्वक साधना करते रहना ।

३० **संयोग ज्ञान**–इन्द्रियो अथवा विषयो का सयोग, अथवा बाह्य सयोग को ज्ञान से हेय जान कर त्यागना ।

३१ **प्रायश्चित्त**–लगे हुए दोषो का प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना ।

३२ **अन्तिम साधना**–अन्तिम समय मे सलेखना कर के पण्डित-मरण की आराधना करना ।

उपरोक्त योग-सग्रह मे सभी प्रकार की उत्तम करणी का समावेश हो जाता है। इस प्रकार 'बत्तीस योग-सग्रह' से आत्मा को उज्ज्वल करने वाले संत प्रवर, संसार के लिए मगल रूप हैं ।

परिशिष्ट

पृष्ठ १३० की पाद-टिप्पण मे साधु-साध्वी के आहारादि ग्रहण मे लगने वाले दोषो की गाथाएँ दी है, किन्तु समझने के लिए आहार करने, त्यागने और एषणा के दोष, सक्षेप मे यहाँ दिये जाते हैं।

आहार क्यो करते हैं ?

आहार करने के निम्न छ कारण श्री उत्तराध्ययन अ ३६ मे इस प्रकार वताये हैं।

(१) क्षुधा-वेदनीय—भूख को मिटाने के लिए।

(२) गुरुजन, तपस्वी और रोगी आदि साधुओ की वैयावृत्य के लिए।

(३) ईर्या समिति का पालन करने के चिए।

(४) सयम पालने के लिए।

(५) अपने प्राणो की रक्षा के लिए।

(६) धर्म चिन्तन के लिए—आर्त्त-ध्यान को टाल कर धर्मध्यान मे शान्तिपूर्वक लगे रहने के लिए।

उपरोक्त छ कारणो से निर्ग्रंथ मुनि आहार करते हैं।

आहार त्याग के कारण

(१) रोगोत्पत्ति हो जाने पर।

(२) उपसर्ग—सकट-उपस्थित होने पर।

(३) ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए।

(४) जीवो की रक्षा के लिए।
(५) तप करने के लिए।
(६) शरीर त्यागने के लिए—अन्त समय की सलेषणा करने के लिए।

उद्गम के १६ दोष

निम्न लिखित दोष गृहस्थ से लगते हैं।

१ आधाकर्म—किसी साधु के निमित्त से आहार आदि वनाना।

२ औद्देशिक—जिस साधु के लिए आहारादि वना है, उसके लिए तो वह आधाकर्मी है, किन्तु दूसरे के लिए वह औद्देशिक है। ऐसे आहार को दूसरे साधु ले, अथवा अन्य याचको के लिए वनाये हुए आहार मे से, या फिर अपने लिए वनते हुए आहार मे साधुओ के लिए भी सामग्री मिला कर वनाया हो।

३ पूतिकर्म-शुद्ध आहार मे आधाकर्मी आदि दूषित आहार का कुछ अंश मिलाना।

४ मिश्रजात—अपने और साधुओ—याचको के लिए एक साथ वनाया हुआ आहार।

५ स्थापना—साधु को देने के लिए अलग रख छोडना।

६ पाहुडिया—साधु को अच्छा आहार देने के लिए मेहमान अथवा मेहमानदारी के समय को आगे पीछे करना।

७ प्रादुष्करण–अंधेरे मे रखी हुई वस्तु को प्रकाश मे ला कर देना ।

८ क्रीत–साधु के लिए खरीद कर देना ।

९ प्रामीत्य–उधार ले कर साधु को देवे ।

१० परिवर्तित–साधु के लिए अदल-बदल करके ली हुई वस्तु ।

११ अभिहृत–साधु के लिए वस्तु को अन्यत्र अथवा साधु के सामने ले जाकर देना ।

१२ उद्भिन्न–वरतन का लेप, छांदा आदि खोल कर देवे ।

१३ मालापहृत–ऊँचे माल पर, नीचे भूमिगृह मे अथवा तिरछे ऐसी जगह वस्तु रखी हो कि जहां से निसरणी आदि पर चढना पडे ।

१४ अच्छेद्य–निर्वल से छीन कर देना ।

१५ अनिसृष्ट–भागीदारी की वस्तु, किसी भागीदार की विना इच्छा के दी जाय ।

१६ अध्यवपूरक–साधुओ का गाम मे आगमन सुन कर वनते हुए भोजन मे कुछ सामग्री वढाना ।

उद्गम के ये सोलह दोष, गृहस्थ—दाता-से लगते हैं ।

उत्पादन के १६ दोष

निम्न लिखित सोलह दोष, साधु द्वारा लगाये जाते हैं ।

१ धात्रीकर्म–वच्चे की साल-सभाल करके अथवा धाय की नियुक्ति करवा कर आहारादि लेना ।

२ अप्रमाण—पुरुष के ३२, स्त्री के २८, नपुंसक के २४ कवल प्रमाण आहार से अधिक आहार करना।

३ अगार—निर्दोष आहार को भी लोलुपता सहित खाना।

४ धूम दोष—स्वाद रहित आहार की, या दाता की निन्दा करते हुए खाना।

५ अकारण—आहार करने के छ. कारण हैं, उनमे से कोई भी कारण नही होने पर भी स्वाद अथवा पुष्टि आदि के लिए आहार करना।

उद्गम के १६, उत्पादन के १६, एषणा के १० और परिभोगैषणा (माँडले) के ५ यो ४७ दोष हुए। इन सेतालीस दोषो से बच कर जो शुद्ध आहार करते हैं, वे जिनेश्वर भगवत की आज्ञा के आराधक हैं।
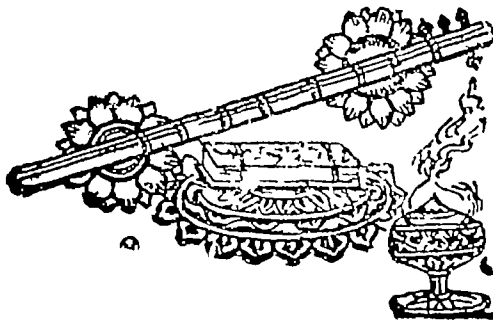
संघ के प्रकाशन

	मूल्य
१ मोक्षमार्ग ग्रन्थ	अप्राप्य
२ भगवती सूत्र भाग १	"
३ भगवती सूत्र भाग २	"
४ भगवती सूत्र भाग ३	"
५ भगवती सूत्र भाग ४	"
६ भगवती सूत्र भाग ५	"
७ भगवती सूत्र भाग ६	५—००
८ भगवती सूत्र भाग ७	७—००
९ उत्तराध्ययन सूत्र	अप्राप्य
१० उववाइय सुत्त	"
११ जैन स्वाध्यायमाला	४—५०
१२ दशवैकालिक सूत्र	२—२५
१३ सिद्धस्तुति	०—७५
१४ स्त्री प्रधान धर्म	अप्राप्य
१५ सुखविपाक सूत्र	०—५५
१६ कर्म प्रकृति	०—२०
१७ सामायिक सूत्र	०—१५
१८ सूयगडांग सूत्र	अप्राप्य
१९ विनयचन्द चौबीसी	०—४०
२० नन्दी सूत्र	अप्राप्य
२१ आलोचना पंचक	०—३५
२२ श्री उपासकदशांग सूत्र	४—००
२३ सम्यक्त्व-विमर्श (हिन्दी)	अप्राप्य
२४ अंतगडदशा सूत्र	३—००
२५ प्रतिक्रमण सूत्र	०—४५
२६ संसार-तरणिका	१—२५
२७ तेतीस बोल	०—३५
२८ एक सौ दो बोल का बासठिया	०—१५
२९ गुणस्थान स्वरूप	०—२५

	मूल्य
३० गति-आगति	०-१५
३१ प्रश्नव्याकरण सूत्र	७-००
३२ नव तत्त्व	१-२५
३३ पच्चीस बोल	अप्राप्य
३४ समर्थ समाधान भाग १	३-००
३५ समर्थ समाधान भाग २	अप्राप्य
३६ रजनीश दर्शन	अप्राप्य
३७ शिविर व्याख्यान	अप्राप्य
३८ मगल-प्रभातिका	०-६०
३९ सार्थ सामायिक सूत्र	अप्राप्य
४० समिति-गुप्ति	०-४०
४१ स्तवन-तरगिणी	अप्राप्य
४२ अणुत्तरोववाइयदसा सुत्त	०-५०
४३ तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	१-५०
४४ सम्यक्त्व-विमर्श (गुजराती)	अप्राप्य
४५ भवनाशिनी भावना	०-३०
४६ अतकृत विवेचन	अप्राप्य
४७ तीर्थंकरो का लेखा	"
४८ जीव-धडा	०-२५
४९ लघुदण्डक	०-४०
५० महादण्डक	०-४०
५१ तीर्थंकर चरित्र भाग १	अप्राप्य
५२ तीर्थंकर चरित्र भाग २	१०-००
५३ तीर्थंकर चरित्र भाग ३	९-००
५४ जैन सिद्धात थोकसग्रह भाग १, २	अप्राप्य
५५ आत्म-शुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी	३-५०
५६ समकित के ६७ बोल	०-२०
५७ समर्थ समाधान भाग ३	३-५०
५८ अगपविट्ठ सुत्ताणि भाग १	१४-००
५९ तत्त्व-पृच्छा	३-००
६० सामण्ण-सड्ढि धम्मो	१-००
६१ अग पविट्ठ सुत्ताणि भाग २	२५-००